श्री पार्श्वनाथाय नमः

श्री कुमुदचन्द्राचार्य विरचित—

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

मूल, नूतनपद्यानुवाद, अर्थ, यंत्र, मंत्र, ऋद्धि, साधनविधि
गुण, फल तथा श्रीमद्देवेन्द्रकीर्तिप्रणीता

कल्याणमन्दिरस्तोत्रपूजासहित

लेखक—

पं० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

खुरई (सागर) म० प्र०

प्रकाशक—

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय-सदन,

खुरई (सागर) म० प्र०

प्रथमवार १००० | वीर निर्वाण संवत् २४८८ | सजिल्द २।)

अजिल्द २)

मुद्रकः—"नीरज" जैन, चन्द्रकान्ता प्रिंटिंग वर्क्स, जबलपुर।

श्री कुन्थुसागर स्वाध्यायसदन खुरई का

अगला तृतीय भव्य प्रकाशन

विषापहारस्तोत्र

सरल अर्थ, नूतन पद्यानुवाद, ऋद्धि मंत्र, यंत्र,

साधनविधि, फल तथा पूजा सहित

शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

धन्यवाद—

इस पुस्तक के प्रकाशन मे २०१) श्री नाथालालजी छावड़ा; फर्म मोतीलाल सूरजमल जी छावड़ा; खंडवा। ५१) श्री बाबू रतनलालजी जैन, कालका निवासी, देहली। १०१) श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन खुरई द्वारा प्रकाशित भक्तामर महाकाव्य की बिक्री से। १०१) गुप्त दान से। तथा २१) उजनेट की जैनसमाज से सिद्धचक्र विधान के उपलक्ष्य में सहायतार्थ प्राप्त हुए हैं। आप सब के इस साहाय्य से ही यह पुस्तक प्रकाश मे आ रही है। एतदर्थ आपका आभार है।

भारतवर्ष के अद्वितीय आध्यात्मिक विद्वान, प्रशममूर्ति,
प्रातःस्मरणीय, न्यायाचार्य, श्रद्धेय, श्रीमान्

क्षु० पं० गणेशप्रसादजी वर्णी

के पुनीत कर-कमलों में

सविनय समर्पित

भूमिका

कल्याणमन्दिरस्तोत्र और उसके रचयिता

जैनधर्म में जहाँ ज्ञान को महत्त्व दिया गया है वहाँ भक्ति को भी उल्लेखनीय स्थान मिला है। स्वामी समन्तभद्र जैसे उद्भट आचार्यों ने अपने अनेक ग्रन्थ या यों कहिए कि रत्नकरण्डकश्रावकाचार को छोड़ कर शेष सभी उपलब्ध ग्रन्थ अरिहन्त भगवान के स्तवन मे ही रचे हैं। उनके स्वयम्भूस्तोत्र, देवागमस्तोत्र, युक्त्यनुशासनस्तोत्र, और जिनशतक (स्तुतिविद्या) ये स्तोत्र-ग्रन्थ अर्हद्भक्ति के उत्कृष्ट नमूने हैं और भारतीय स्तोत्र-साहित्य में बेजोड़ एवं अद्वितीय कृतियाँ हैं। आचार्य मानतुङ्ग का भक्तामरस्तोत्र, आचार्य धनञ्जय कवि का विषापहारस्तोत्र, आचार्य वादिराज का एकीभावस्तोत्र, श्रीभूपालकवि (भोजराज महाराज) का जिनचतुर्विंशतिकास्तोत्र और आचार्य कुमुदचन्द्र का प्रस्तुत कल्याणमंदिरस्तोत्र ये स्तुति-रचनाएँ भी अर्हद्भक्ति की अपूर्वधारा को बहाने वाली है।

भक्ति और उसका उद्देश्य

संसारी प्राणी राग, द्वेष, लोभ, अहंकार, अज्ञान आदि अपने दोषों से निरन्तर दुखी बना चला आ रहा है और कभी-कभी वह कर्म की चपेट में इतना आ जाता है कि वह घबड़ा उठता है और उस दुःख से छूटने के लिये ऐसी जगह अथवा ऐसी आत्मा की तलाश करता है—उस ओर अपना

ध्यान केन्द्रित करता है जहाँ दुःख नहीं है और न दुःख के कारण राग, द्वेष, अज्ञानादि हैं। इस तलाश में उसकी दृष्टि वीतराग आत्मा में जाकर स्थिर हो जाती है और उसके दुःख-मोचनादि गुणों में अनुराग करने लगती है। इस गुणानुराग को ही भक्ति कहते हैं। श्रद्धा, प्रार्थना, स्तुति, विनय, आदर, नमस्कार, आराधन आदि ये सब उसी भक्ति के रूप हैं और भक्ति का यही प्रयोजन अथवा उद्देश्य है कि स्तुत्य के वे दुःखरहितादिगुण भक्त को प्राप्त हो जाँय—वह भी उन जैसा बन जाय। इसी बात को प्रस्तुत स्तोत्र मे भी निम्न प्रकार बतलाया है—

त्वं नाथ दुःखिजन-वत्सल ! हे शरण्य !,
कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय,
दुःखाऽङ्कुरोद्दलन — तत्परतां विधेहि ॥

'हे नाथ ! आप दुखी जनों के वत्सल हैं, शरणागतों को शरण देने वाले हैं, परम कारुणिक हैं और इन्द्रिय विजेताओं में श्रेष्ठ हैं, मुझ भक्त को भी दया कर आप दुःख और दुःखदायी अज्ञानादि को नाश करने वाला बनायें।'

यही समन्तभद्र स्वामी ने, जिन्हें विद्वानों द्वारा 'आद्य स्तुतिकार' कहे जाने का गौरव प्राप्त है, स्वयम्भूस्तोत्र में शान्ति जिनका स्तवन करते हुए कहा है:—

स्वदोष — शान्त्या विहितात्मशान्तिः,
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद् भवक्लेश...............भयोपशान्त्यै,
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥

'हे शान्तिजिन ! आपने अपने दोषों को शान्त करके आत्मशान्ति प्राप्त की है तथा जो आपकी शरण में आये उन्हें भी आपने शान्ति प्रदान की है। अतः आप मेरे लिये भी संसार के दुःखों तथा भयों अथवा संसार के दुःखों के भयों को शान्त (दूर) करने में शरण हों।'

यही कारण है कि स्तुति में भक्त यह कामना करता है कि 'हे भगवन् ! मेरे दुख का क्षय हो, कर्म का नाश हो, आर्त-रौद्र ध्यान रहित सम्यक् मरण हो और मुझे बोधि (सम्यग्दर्शनादि) का लाभ हो। आप तीनों जगत के बन्धु हैं और इसलिये हे जिनेन्द्र ! आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

जैसा कि एक प्राचीन निम्नगाथा में बतलाया गया है—

दुक्ख-खओ कम्म-खओ, समाहिमरणं च बोहि-लाहो य।
मम होउ तिजग-बंधव !, तव जिणवर ! चरण-सरणेण ॥

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि वीतरागदेव की उपासना अथवा भक्ति से क्या दुःखों और दुःख के कारणों का अभाव सम्भव है ? जब वे वीतरागी हैं तो दूसरे के दुःखादि को दूर करने में वे समर्थ कैसे हो सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वीतरागदेव विशुद्ध एवं पवित्र आत्मा हैं उनके स्मरणादि से आत्मा में शुभ परिणाम होते हैं और उन शुभ परिणामों से पुण्य प्रकृतियों का उपार्जन तथा पाप प्रकृतियों का ह्रास होता है और उस हालत में वे पाप प्रकृतियाँ भक्त के अभीष्ट दुःखों तथा दुःख के कारणों के अभाव में बाधक नहीं हो पातीं—उसे उसके अभीष्टफल की प्राप्ति अवश्य हो जाती है। इसी बात को एक निम्नपद्य में बहुत ही स्पष्टता के साथ में बतलाया गया है—

नेष्टं विहन्तुं शुभभाव-भग्न-रसप्रकर्षः प्रभुरन्तरायः ।
त्वत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकदाऽर्हदादेः ॥

'अरिहन्तादि परमेष्ठियों के गुणों में भक्तिपूर्वक किया गया नमस्कारादि अभीष्टफल को देता है। साथ ही उससे पैदा हुए शुभ परिणामों के सामर्थ्य से अन्तरायकर्म (पाप-कर्म) निर्वीय होकर नष्ट हो जाता है और वह इष्ट का विघात करने में समर्थ नहीं होता।'

इसी स्तोत्र में भी एक जगह कहा गया है:—

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथलीभवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभाग
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥

'हे विभो ! जिस प्रकार चन्दन के वन में मयूर (मोर) के पहुँचते ही वृक्षों से लिपटे सर्प तत्काल उनसे अलग हो जाते हैं उसी प्रकार भक्त के हृदय में आपके विराजमान होने (स्मरणादि किये जाने) पर अत्यन्त गाढ़ अष्ट कर्मों के बन्धन भी क्षण भर में ही ढीले पड़ जाते हैं।'

इतना ही नहीं बल्कि वह परमात्मदशा को भी प्राप्त हो जाता है। जैसा कि इसी स्तोत्र के निम्न पद्य में प्रतिपादन किया गया है:—

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन,देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके, चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥

'हे जिनेश ! जिस प्रकार धातुविशेष (अशुद्ध स्वर्णादि) अग्नि की तेज आँच मे अपने पाषाणरूप अशुद्धभाव को छोड़ कर शीघ्र ही सोना हो जाता है उसी प्रकार आपके ध्यान

से संसारी जीव भी शरीर का त्याग कर अशरीरी परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।'

विद्यानन्द स्वामी भी अपनी आप्त विषय पर लिखी गई आप्तपरीक्षा में यही बतलाते हुए कहते हैं—

श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः, प्रसादात्परमेष्ठिनः।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं, शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवाः॥

'परमेष्ठी के गुणस्मरणादि से स्तुतिकर्ता को श्रेयोमार्ग (सम्यग्दर्शनादि) की प्राप्ति और ज्ञान दोनों होते हैं। अतः बड़े-बड़े मुनीश्वरों ने उनका गुणस्तवन किया है।'

तत्त्वार्थसूत्रकार महान् आचार्य श्री गृद्धपिच्छ भी इसी बात को प्रदर्शित करते हुए अपने तत्त्वार्थसूत्र के शुरू में निम्नप्रकार मंगलाचरणरूप गुणस्तोत्र करते हैं:—

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि वीतराग देव को भक्त की स्तुति-प्रार्थना अथवा नमस्कारादि से कोई प्रयोजन नहीं है—उसे वह करे चाहे न करे, क्योंकि वह वीतराग एवं वीतद्वेष है और इसलिये उसके करने से वह प्रसन्न और न करने से अप्रसन्न नहीं होता। फिर भी उसके पवित्र गुणों के स्मरण से भक्त का मन अवश्य पवित्र होता है जैसा कि समन्तभद्र स्वामी ने कहा है:—

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृति र्नः, पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥

इतना ही नहीं, बल्कि वीतराग देव की स्तुति-प्रार्थनादिक करने वाला तो स्वाभावतः सुखों एवं श्रीसम्पन्नता को

प्राप्त होता है और निन्दा करने वाला दुःख को पाता है। किन्तु वीतराग देव दर्पण की तरह दोनों में राग-द्वेष रहित रहते हैं। जैसा कि स्वामी समन्तभद्र और आचार्य धनंजय के निम्न पद्यों से प्रकट है:—

(क) *सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते, द्विषा त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।*
भवानुदासीनतमस्तयोरपि, प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥

—स्वयम्भूस्तोत्र ॥ ६६ ॥

(ख) *उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयिस्वभावाद्विमुखश्च दु.खम्।*
सदाऽवदातद्युतिरेकरूप - स्तयोस्त्वमादर्श इवाऽवभासि ॥

—विषापहार ॥ ७ ॥

इस सब कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परम वीतराग देव की भक्ति से संसारी जीवों को दुःखों का नाश आदि अभीष्ट फल अवश्य प्राप्त होता है। अतः भक्ति को लेकर जैनधर्म में जैनाचार्यों द्वारा विपुल साहित्य की रचना होना सर्वथा उपयुक्त एवं स्वाभाविक है।

प्रस्तुत स्तोत्र के विषय में—

प्रस्तुत कल्याणमन्दिर स्तोत्र भक्तामरस्तोत्र की तरह अतिशयपूर्ण एवं भावगर्भ भक्तिविषय की एक श्रेष्ठ रचना है। इसके भाव और भाषा दोनों बड़े ही विशद हैं। इसमें भक्ति की जो धारा प्रवाहित है वह अनूठी है। अनुश्रुतियों तथा स्तोत्र के अन्तःपरीक्षण से ज्ञात होता है कि इसकी रचना उस समय हुई है जब आचार्य महोदय पर कोई विपत्ति आई हुई थी। स्पष्ट है कि जैनाचार्यों ने जो स्तवन रचे हैं वे उन पर संकट आने पर जिनशासन का प्रभाव और चमत्कार दिखाने के लिये ही रचे हैं। जैसे समन्तभद्र

स्वामी ने शिवपिण्डी को नमस्कार करने के लिये बाध्य करने का प्रसंग उपस्थित होने पर स्वयम्भूस्तोत्र की रचना की, आचार्य मानतुङ्ग ने ४८ तालों के अन्दर बन्द किये जाने पर भक्तामरस्तोत्र बनाया, आचार्य धनजयकवि ने अपने पुत्र के सर्प द्वारा डसे जाने पर विषापहारस्तोत्र को रचा और आचार्य वादिराज ने कुष्टरोग में पीड़ित होने पर एकीभाव स्तोत्र बनाया। उसी प्रकार आचार्य कुमुदचन्द्र पर भी किसी कष्ट के आने पर उनके द्वारा इस स्तोत्र की रचना हुई है। कहा जाता है कि उन्होंने इस स्तोत्र द्वारा भगवान पार्श्वनाथ का स्तवन करके एक स्तम्भ से उनकी प्रतिमा प्रकटित की थी और जिनशासन का प्रभाव एवं चमत्कार दिखाया था।

इस स्तोत्र का दूसरा नाम 'पार्श्वजिनस्तोत्र' भी है जैसा कि उसके दूसरे पद्य में प्रयुक्त 'कमठ-स्मय-धूमकतुः' नाम से प्रकट है जो भगवान पार्श्वनाथ के लिये आया है। 'कल्याण मन्दिर' शब्द से प्रारम्भ होने के कारण इसे कल्याणमन्दिर स्तोत्र उसी प्रकार कहा जाता है जिस प्रकार आदिनाथ स्तोत्र को 'भक्तामर' शब्द से शुरू होने से 'भक्तामर स्तोत्र' कहा जाता है।

इस सुन्दर कृति को भक्तामरस्तोत्र की तरह दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय मानते हैं। श्वेताम्बर इसे सन्मतिसूत्र आदि के कर्ता श्वेताम्बर विद्वान् सिद्धसेन दिवा-की रचना बतलाते हैं और दिगम्बरस्तोत्र के अन्त में आये 'जननयन-कुमुदचन्द्र-प्रभास्वराः' आदि पद्य में सूचित 'कुमुद-चन्द्र' नाम से उसे दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र की कृति मानते हैं। इस सम्बन्ध में यहाँ खास तौर से ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस स्तोत्र में 'प्राग्भारसंभृतनभांसि रजांसि रोषात्'

आदि ३१ वें पद्य से लेकर 'ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड' आदि ३३ वें पद्य तक तीन पद्यों में भगवान् पार्श्वनाथ पर दैत्य कमठ द्वारा किये गये उपसर्गों का उल्लेख किया गया है जो दिगम्बर परम्परा के अनुकूल है और श्वेताम्बर परम्परा के प्रतिकूल है; क्योंकि दिगम्बर परम्परा में तो भगवान पार्श्व-नाथ को सोपसर्ग और अन्य २३ तीर्थंकरों को निरुपसर्ग प्रतिपादन किया गया है और श्वेताम्बरीय आगम सूत्रों तथा आचारांगनिर्युक्ति में वर्धमान (महावीर) को सोपसर्ग और २३ तीर्थंकरों को जिनमें भगवान पार्श्वनाथ भी हैं, निरुपसर्ग बतलाया है। जैसा कि उक्त निर्युक्ति गत निम्नगाथा से प्रकट है—

सव्वेसिं तवोकम्मं, निरूवसग्गं तु वण्णियं जिणाणं ।
नवरं तु वड्ढमाणस्स, सोवसग्गं मुणेयव्वं ॥ २७६ ॥

'सब तीर्थंकरों का तपःकर्म निरुपसर्ग कहा गया है और वर्द्धमान का तपःकर्म सोपसर्ग जानना चाहिए।'

इस बारे में मेरा वह खोजपूर्ण लेख देखना चाहिए जो अनेकान्त (वर्ष ६ किरण १०-११ पृष्ठ ३३६) में 'क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्तभद्र एक हैं ?' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है।

स्तोत्र के प्रारम्भ में भी भगवान् पार्श्वनाथ के स्तवन की प्रतिज्ञा करते हुए उन्हें 'कमठस्मयधूमकेतुः' के नाम से उल्लेखित किया है।

इसके सिवाय स्तोत्र में 'धर्मोपदेशसमये' आदि १९ वें पद्य से लेकर 'उद्योतितेषु भवता' आदि २६ वें पद्य तक ८ पद्यों में उसी तरह ८ प्रतिहार्यों का वर्णन किया गया है

जिस प्रकार दिगम्बर भक्तामरस्तोत्र में २८ वें पद्य से लेकर ३५ वें पद्य तक के ८ पद्यों में उनका वर्णन उपलब्ध है। अन्यथा, श्वेताम्बर भक्तामरस्तोत्र की तरह इसमें भी चार ही प्रातिहार्यों (अशोकवृक्ष, पुष्पवर्षा, दिव्यध्वनि और चमर) का कथन होना चाहिए था, किन्तु इसमें उन चार प्रतिहार्यों (सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि और छत्र) का भी प्रतिपादन है जिनका दिगम्बर भक्तामरस्तोत्र में है और श्वेताम्बर भक्तामरस्तोत्र मे नहीं है। अतः इन बातों से इसे दिगम्बर कृति होना चाहिए।

इसके रचयिता कुमुदचन्द्राचार्य का सामान्य अथवा विशेष परिचय क्या है और उनका समय क्या है? इस सम्बन्ध में विद्वानों को विचार एवं खोज करना चाहिए। विक्रम की १२ वीं शताब्दी के विद्वान् वादिदेवसूरि की जिन दिगम्बर विद्वान् कुमुदचन्द्राचार्य के साथ 'स्त्रीमुक्ति' आदि विषयों पर शास्त्रार्थ होने की बात कही जाती है, यदि वे ही कुमुदचन्द्राचार्य इस स्तोत्र के रचयिता हैं तो इनका समय विक्रम की १२ वीं शताब्दी समझना चाहिए।

अन्त में मैं समाज के उत्साही विद्वान् पं० कमलकुमार जी शास्त्री के अध्यवसाय की सराहना करता हूँ कि जिन्होंने इस स्तोत्र को बहुपरिश्रम के साथ समाज के सामने इस रूप में प्रस्तुत किया है।

॥ इति शम् ॥

श्री समन्तभद्र विद्यालय,
देहली।
२७ जनवरी, १९५२

दरबारीलाल जैन, कोठिया,
(न्यायाचार्य) मुख्याध्यापक,

आवेदन

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन खुरई की ओर से गत वर्ष श्री भक्तामर महाकाव्य का एक सर्वांगीण सुन्दर संस्करण श्री पं० कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद' खुरई द्वारा नवीन भावपूर्ण सरल पद्यानुवाद, अर्थ, भावार्थ, ऋद्धि, मंत्र, साधनविधि, फल एवं श्री सोमसेनकृत भक्तामरकाव्यमंडल संस्कृतपूजा उद्यापन आदि सहित सम्पादित करा कर २००० की संख्या में प्रकाशित किया गया था। हर्ष है कि धार्मिक जैन-जनता में उसका संतोषजनक स्वागत हुआ। समस्त जैन पत्रों एवं कई जैनेतर सार्वजनिक समाचार पत्रों ने भी उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। उसकी बढ़ती हुई मांग को उसकी लोकप्रियता और उपयोगिता का प्रमाण मान कर प्रोत्साहित हो हम अपनी पूर्व सूचनानुसार अब यह संसार के असह्य कष्टों से छुड़ाने वाला, विविध उपद्रव विनाशक वा पापनाशक श्री कल्याणमन्दिरस्तोत्र लेकर आपके सामने उपस्थित हो रहे हैं।

श्री कुमुदचन्द्राचार्य की यह अमर रचना धार्मिक जैन समाज में बड़ी ही रुचि और श्रद्धा के साथ नित्य नियमित पठन-पाठन की वस्तु मानी जाती है। उत्तमकाव्य की वे सभी विशेषताएं इसमें बड़ी ही सुन्दरता के साथ समाविष्ट हैं, जो इसके अध्ययन-मनन करने वालों को मुग्ध और आत्म-विभोर कर देती हैं। कवि ने भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति में अपने आपको खोकर लोकोत्तर कल्पनाओं द्वारा मानवकल्याण की साधना के लिए एक ऐसी सीढ़ी तैयार कर दी है, जिस पर से

हमारी आत्मिक अपूर्णता उस अनन्त सम्पूर्णता को छूने लगती है जो आत्म-विकाश के लिये अत्यन्त आवश्यक मानी गई है ।

ऐसे सुन्दर स्तोत्र के सर्वाङ्ग पूर्ण प्रकाशन की आवश्यकता अनुभव कर इस सदन के उत्साही कार्यकर्त्ता श्री पंडित कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद' ने बड़ी लगन के साथ जैसलमेर, कारंजा, देहली आदि के प्राचीन जैन शास्त्रभंडारों की शोध खोज कर आवश्यक सामग्री का संकलन किया है । इस कार्य में कुमुद जी को कठिन श्रम और प्रवास कष्ट उठाना पड़ा किन्तु आवश्यक साहित्य की उपलब्धि के आनन्द ने उनके उत्साह को दूना कर दिया, अतएव उनका जितना भी आभार माना जाय थोड़ा होगा । यह स्तोत्र उन्हीं कुमुद जी द्वारा सुसम्पादित हो शुद्ध मूलपाठ, सुन्दर सरल नवीन पद्यानुवाद, भावार्थ, ऋद्धि, मन्त्र, यंत्र, साधनविधि, फल तथा उसकी पूजा और उद्यापन आदि विविध सामग्री के साथ ही श्री पंडित बनारसीदास जी कृत भावपूर्ण पद्यानुवाद सहित आपके कर-कमलों में देने को हम समर्थ हुए हैं । आशा है कृपालु धर्मप्रेमी सज्जन इसे अपना कर हमें उत्साहित करेंगे ।

आवेदक—

मंत्री. श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन,

खुरई (सागर) म० प्र०

अपनी बात—

पुस्तक लिखने के पूर्व लेखक को अपनी ओर से कुछ लिखना ही चाहिये। इस परम्परा के नाते मैं निम्न पंक्तियां अपने प्रिय पाठकों के सम्मुख नहीं रख रहा हूँ; न ही स्तोत्र की स्वयं सिद्ध सर्वश्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराने की मेरी अभिलाषा अथवा साहस है। यहां तो केवल अपनी उस अक्षमता को प्रकट करना है; जो संभवतः किन्हीं सक्षम एवं कुशल हाथों की ही बाट जोहता २ निराश सा हो रहा था। आशा है, इसलिये आप प्रस्तुत पुस्तक में रह जाने वाली त्रुटियों एवं अभाव की ओर लक्ष्य करने के पूर्व उन अनेक कठिनाइयों और बाधाओं की ओर अपना विशाल दृष्टिकोण अपनायेंगे जिनके कारण "भक्तामर स्तोत्र" से भी श्रेष्ठतर यह 'कल्याण-मन्दिर स्तोत्र' जो कि वस्तुतः कल्याण का ही मन्दिर है, अपने उस सर्वाङ्ग सम्पूर्ण स्वरूप में अभी तक जनता के सामने नहीं आ सका और यही कारण है कि अपने ख्याति एवं लोकप्रियता के क्षेत्र में वह 'गुदड़ी का लाल' ही बना रहा। आद्योपान्त इस मङ्गलमय स्तोत्र का रसपान करके पाठक स्वीकार करेंगे कि इसमें वह भावपूर्ण भक्ति है जो कि आनन्द का एक अविरल निर्झर वहा सकने की शक्ति रखती है।

दैविक अतिशय एवं फलप्राप्ति की अपेक्षा से भी प्रस्तुत स्तोत्र अन्य प्रसिद्ध प्रचलित जैनस्तोत्रों की तुलना में कितना अधिक चमत्कार पूर्ण है, इसको इतिहास की वह घटना ही स्पष्ट कर देती है कि जिसके द्वारा इस स्तोत्र के सम्माननीय रचयिता श्री कुमुदचन्द्राचार्य जी ने ओंकारेश्वर के शिवलिङ्ग से श्री १००८ श्री पार्श्वनाथ जी का सौम्य प्रतिबिम्ब अपार

जनता के समक्ष प्रकट कर विक्रमादित्य जैसे कट्टर शैव सम्राट का मस्तक नम्रीभूत कर दिया एवं पतितपावन जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की। कहना नहीं होगा कि ऐसी अवस्था में पुस्तक की जितनी ही अधिक आवश्यकता थी, उतना ही अधिक उसकी सम्पन्नता में साधनों का अभाव था। उन्हीं सारी कठिनाइयों को आपके सामने रखे बिना मुझसे नहीं रहा जायगा। क्योंकि उन्हें प्रकट न करने देना भी एक प्रकार की अपूर्णता सिद्ध होती।

अन्य स्तोत्रों की भांति इस स्तोत्र का पूर्ण अथवा अपूर्ण इतिहास जैन शास्त्रों में कहीं है, यह खोजना जहां एक समस्या बनी हुई थी, वहां दूसरी ओर श्लोकों के ऋद्धिमंत्र तथा यंत्रों को शुद्धतम रूप से पुस्तक में देना असंभव बना हुआ था। क्योंकि घोर अध्यवसाय एवं उद्योग के बाद इस स्तोत्र की एक ही प्रति देहली के पंचायती जैनमन्दिर से उपलब्ध हुई और वह भी अशुद्ध। परन्तु प्राकृतभाषा के विद्वान श्रीमान पंडित बालचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री अमरावती तथा श्रीमान पंडित फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री बनारस को असीम कृपा के लिये क्या कहा जाय कि जिन्होंने अनवरत श्रम करके ऋद्धियों, मंत्रों और यंत्रों में उपयुक्त संशोधन किये।

यहां यह स्पष्ट करना अधिक आवश्यक है कि प्रस्तुत पुस्तक में साधनविधिसहित दो प्रकार के ऋद्धि और मंत्र दिये गये हैं। एक तो वे जो प्रत्येक श्लोक के नीचे दिये गये हैं और दूसरे वे जो कि पुस्तक के मध्य में (पृष्ठ ९७ से पृष्ठ १४४ तक) अलग से ही यंत्राकृतियों सहित प्रकाशित हैं। वह सब देहली से प्राप्त मूल प्रति का ही संशोधित रूप है। यद्यपि रूप इसका अवश्य संशोधित है तथापि एक आवश्यक अभाव

ऋद्धियों में विद्यमान होने के कारण पहले प्रकार की ऋद्धियां ही श्लोकों के नीचे स्थान पा सकीं। वह अभाव है मूल ऋद्धियों में संज्ञा का लोप होना। इसी जटिलता के फलस्वरूप "महाबन्ध ग्रन्थ (महाधवल सिद्धान्त शास्त्र) के अनुसार ऋद्धियों की संज्ञाएं उनमें जोड़ कर मूल के साथ बड़े ही कौशल से सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। इस प्रकार श्लोकों के नीचे लिखी हुई ऋद्धियां एक सर्वथा नवीन एवं दुर्लभ कृति बन कर पाठकों के सामने लाते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस नई सूझ का विशेष श्रेय श्रीमान पं० बालचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री अमरावती को ही है, जिन्होंने सामञ्जस्य स्थापित करने मे सराहनीय उद्योग कर मुझे अनुगृहीत किया।

देहली मे जो प्रति मुझे प्राप्त हुई वह वस्तुतः जैसलमेर के विशाल शास्त्र भंडार की मूलप्रति की ही प्रतिलिपि है किन्तु उसे प्राप्त करने में असफलता के अतिरिक्त और क्या हाथ लगता !

इस पुस्तक में प्रकाशित मंत्राम्नाय श्री देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धारक संस्था सूरत से प्रकाशित स्तोत्रत्रय से लिया गया है। और यह मन्त्राम्नाय इस स्तोत्रत्रय में आचार्य महाराज श्री जयसिंह जी सूरि द्वारा संगृहीत हस्तलिखित प्रति से लिया गया है। इस मन्त्राम्नाय की रचना ग्यारहवीं शताब्दी के बाद हुई प्रतीत होती है। क्योंकि महान मन्त्रवादी श्री मल्लिसेनसूरि विरचित भैरवपद्मावतीकल्प नामक ग्रन्थ में इन मन्त्रों का अधिकांश भाग आया है और ये मल्लिसेन सूरि ग्यारहवीं शताब्दी में हुए हैं। स्तोत्रत्रय की रचना भैरवपद्मावतीकल्प के बाद हुई है।

येन केन प्रकारेण सब कुछ हो जाने के बाद भी पुस्तक मानो स्वयं ही एक अभाव की पूर्ति के लिये पुकार रही थी

और वह थी 'कल्याणमन्दिरपूजन'। उसके सम्बन्ध में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि बमुश्किल उसकी एक प्रति श्री पं० जयकुमार जी शास्त्री कारंजा से प्राप्त हुई जिसका सुन्दर संशोधन अनेक ग्रन्थों के लेखक व सम्पादक श्रीमान पं० मोहनलाल जी काव्यतीर्थ, जबलपुर ने किया है। अतः उनका जितना भी अनुग्रह माना जाय थोड़ा है।

प्रस्तुत पुस्तक में हमने अंग्रेजी पढ़े लिखे सज्जनों के आनन्द के लिये इस स्तोत्र का अंग्रेजी अनुवाद भक्तामर कल्याणमन्दिर, नमिऊणस्तोत्रत्रय नामक पुस्तक से उद्धृत कर इस पुस्तक में दिया है। जिसके लिये हम इस अनुवाद की प्रकाशिका "श्रीमान् सेठ देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धारक संस्था सूरत" तथा अनुवादक श्रीमान् प्रो० हीरालाल रसिकदास कापड़िया एम० ए० सूरत के विशेष आभारी हैं।

इस स्तोत्र के पद्यानुवाद के संशोधन में उदीयमान तरुण कवि श्री फूलचन्द जी जैन 'पुष्पेन्दु' अध्यापक जैन गुरुकुल खुरई से अधिक सहयोग मिला, अतः उनका भी आभार माने बिना हम नहीं रह सकते।

जैन समाज के लब्धप्रतिष्ठ सिद्धान्तशास्त्री विद्वान पं० दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य प्रधानाध्यापक समन्तभद्र विद्यालय देहली का मैं अत्यन्त ऋणी हूँ, जिन्होंनेइस पुस्तक की भूमिका लिख कर इस पुस्तक के गौरव को बढ़ाया है।

इस भक्तिरस के पुण्यमय पवित्र स्तोत्र से जैन समाज में धार्मिक भावना की अभिवृद्धि हो, संसार का दूषित वातावरण निर्दोष हो, भव्यात्माओं को शांति व आह्लाद का लाभ हो—यही इस प्रकाशन से मेरा अपना हार्दिक प्रयोजन है।

कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

आवश्यक सूचनाएँ

मन्त्रों के आराधन में निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

१—मन्त्र पर पूर्ण श्रद्धान हो।

२—मन में ग्लानि न हो, चित्त शान्त हो और शरीर स्वस्थ हो।

३—मन्त्र की साधना के समय ध्यान इधर-उधर न रखे; मन्त्र में ही निहित हो, मन की प्रवृत्ति को चलायमान नहीं करे।

४—मन्त्र की साधना के समय भयभीत न होवे।

५—मैं अमुक कार्य के लिये अमुक मन्त्र की साधना कर रहा हूँ ऐसा किसी से नहीं कहे किन्तु गुप्तरूप से मन्त्र को सिद्ध करे।

६—शुद्ध एकान्तस्थान में मन्त्र की साधना करे।

७—मन्त्रसाधना की समाप्ति तक स्थान परिवर्तन नहीं करे।

८—जिस मन्त्र की जो साधन विधि है तद्रूप ही कार्य करे अन्यथा प्रवृत्ति करने से विघ्न बाधाएँ उपस्थित हो सकती हैं और सिद्धि में भी आशङ्का हो सकती है।

९—प्रारम्भ से समाप्ति पर्यन्त दीपक, धूपदान, आसनी, माला, वस्त्र आदि चीजों में परिवर्तन नहीं करे।

१०—एक समय शुद्ध सात्विक भोजन करे।

११—जमीन या पाटे पर शयन करे।

१२—ब्रह्मचर्य व्रत से रहें।

१३—हरएक मन्त्र शुभ मिति में प्रारम्भ करे।

१४—धोती दुपट्टा बनियान प्रतिदिन धोकर सुखा देवे।

१५—स्नान करने के बाद ही मन्त्रपाठ प्रारम्भ करे।

१६—धूप बाजारू न खरीदे, शोध कर अपने घर पर ही बनावे।

१७—तिलक लगावे।

१८—घृत का दीपक बराबर जलावे।

१९—मन्त्र प्रारम्भ करने से पूर्व प्रतिदिन अङ्गशुद्धि एवं सकलीकरण अवश्य करे।

२०—चोटी में गांठ अवश्य लगा लेवे।

२१—बार बार आसन न बदले। एक ही आसन से बैठ कर मन्त्र की साधना करे।

२२—जपसमाप्ति के बाद हवन करे पश्चात् श्रावक श्राविकाओं को भोजन करावे।

कल्याणमन्दिर की उत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास

[आज के संसार का स्तर यह है कि उसका बुद्धिवाद सहसा 'चमत्कार' शब्द स्वीकार नहीं करता ! करे भी क्यों ? चमत्कार का सीधा सम्बन्ध 'श्रद्धा' से है—बुद्धि से नहीं। वह श्रद्धा—जिसे जिनपरिभाषा में सम्यक्त्व कहा जाता है- संसार से निरन्तर उठती जा रही है ,इसीलिये ये पौराणिक चमत्कार किसी समय भले ही इतिहास की जीवित घटनाएँ रही हों—पर आज तो उन पर दन्तकथा ही होने का आरोप किया जाता है........। कल्याणमन्दिर स्तोत्र की उत्पत्ति की पीठिका भी एक ऐसी ही चमत्कारिक घटना है। जिसे निम्न कहानी में परिलक्षित किया है। यद्यपि इस कहानी से कल्याणमन्दिर के कर्त्ता के सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश नहीं पड़ता तथापि उनके एकदेश जीवन का सम्बन्ध इस कथानक से भलीभांति प्रकट होता है।]

(१)

ब्राह्ममुहूर्त की वेला है, शिवालयों में शङ्खनाद और घंटानाद आरम्भ हो गये हैं। जो कसौटी पर कसे हुये भक्त हैं वही केवल इस शीत में उत्तरीय ओढ़ और अपनी लम्बी चोटी में गांठ लगाये तेजी से नर्मदातट की ओर बढ़े जा रहे हैं। इन्हीं भक्तों में से एक वह है जो नित्यप्रति "गायत्री" का पाठ करता हुआ आज भी अपनी निराली पगडंडी पर पग बढ़ाये चला जा रहा है।.......

"अरे जरा दूर से चलो; क्या दिखता नहीं है, कि मैं ब्राह्मण हूं ?" परन्तु वे तो आचार्य वृद्धवादी जी थे जो इस कट्टर ब्राह्मण की श्रद्धा की परीक्षा को ही नाम सुन कर निकले थे, अतएव जान बूझकर पुनः घुटनी का धक्का मारही तो दिया। फिर क्या था ? विवाद प्रारम्भ हो गया; जैसा कि आचार्य वृद्धवादी जी चाहते ही थे। वह कट्टर ब्राह्मण वेद पारङ्गत एवं कूटतार्किक था। 'एको ब्रह्म' से लेकर सहस्रों श्लोक उसकी जिह्वा पर नाच उठे। आचार्य जी ने भी व्यवहार धर्म का स्वरूप कहा। निदान एक ग्वाला वहां से निकला और वही मध्यस्थ ठहराया गया इस अनसुलझे विवाद के लिये।

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या......।" आदि कह कर ब्राह्मण ने संस्कृत की अपनी पूर्ण विद्वत्ता सामने उड़ेल दी।

"देखो भाई, जैसे आपकी ये गायें हैं, यदि ये कहीं चली जावें तो आपका क्या गया ? यदि आप उन्हें अपनी मानते ही नहीं।" आदि कह कर वृद्धवादी जी ने ग्वाले की बुद्धि के अनुसार ही व्यावहारिक बात करके अपना पक्ष प्रकट किया।

ग्वाले की बुद्धि में संस्कृत श्लोकों की तुलना में अपने ही ऊपर घटाये गये व्यावहारिक दृष्टान्तों के कारण शीघ्र ही सब कुछ समझ में आ गया। इस भांति उसने वृद्धवादी जी का ही समर्थन किया। तथापि ब्राह्मण सन्तुष्ट नहीं हुआ। होते-होते राजा के पास दोनों पहुँचे और उन्होने भी आचार्य जी को व्यावहारिकता के कारण उनके ही पक्ष में निर्णय दिया।........ निदान ब्राह्मण को उनका शिष्यपना स्वीकार करना ही पड़ा और समयानुसार ये 'कुमुदचन्द्र' नाम से सुसंस्कृत किये गये। ऐसे ही श्रद्धावान, विद्वान पुरुष की खोज में तो वृद्धवादी जी निकले ही थे।

* माड़ना—श्रीकल्याणमन्दिर पूजा *
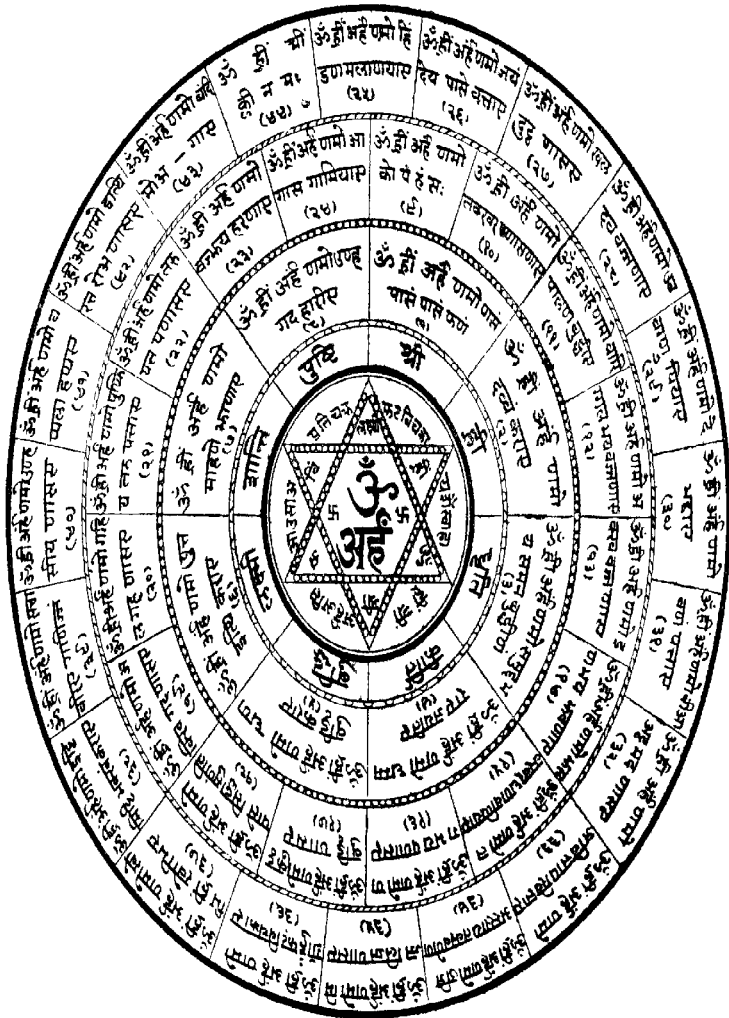
(२)

आत्मशक्ति का तेज छिपाये छिपता नहीं; यही कारण है कि उज्जयिनी नगरी में रहते हुये यद्यपि इन्हें अधिक समय नहीं हुआ तथापि ख्याति वैभव इनके चरणों में लोटने लगा और एक दिन वह आया कि वे विक्रमादित्य नरेश के राज्य-दरबार के ऐतिहासिक नवरत्नों में से 'क्षपणक' नामक एक उज्वल रत्न बन बैठे। कैसे ? उसका भी एक रहस्य है.......।

× × ×

पीछे २ प्रजा का विशाल जनसमूह तथा सब से आगे राजा विक्रमादित्य एक विभूषित मातङ्ग पर आरुढ़ होकर चले जा रहे थे और दूसरी ओर से अपने में लीन, राजकीय आतङ्क से निर्भीक एक निस्पृह साधु। राजा शिवभक्त होकर भी सर्वधर्म समभावी था ही, परीक्षा के हेतु मन ही मन नमस्कार कर लिया। बस क्या था ? आत्मा का बेतार के तार का करंट पवित्र आत्मा तक पहुँच गया और 'धर्मवृद्धिरस्तु' का आशीर्वाद अनायास ही उनके मुख से जोर से निकल पड़ा।

(३)

राजकीय कार्य से कुमुदचन्द्र जी को चित्तौड़गढ़ जाना पड़ा, मार्ग में श्री पार्श्वनाथ जी का एक जैन मन्दिर देख कर ज्योंही वे दर्शनार्थ घुमे कि एक स्तम्भ पर उनकी दृष्टि पड़ी। स्तम्भ एक ओर से खुलता भी था। इन्होंने उसे खोलने का उद्योग किया, किन्तु सफलता में विलम्ब लगा। निदान उसी पर लिखित गुप्त संकेतानुसार उन्होंने कुछ औषधियों के सहारे उसे खोल लिया तथा उसमें रखे हुए अटूट चमत्कारी शास्त्र देखे। एक पृष्ठ पढ़ने के पश्चात् ज्योंही वे दूसरा पृष्ठ पढ़ने लगे

त्यौंही अदृश्य वाणी हुई कि दूसरा पृष्ठ तुम्हारे भाग्य में नहीं है और स्तम्भकपाट पुनः पूर्ववत् बन्द हो गया........। अस्तु जितना मिला उतना ही क्या कम था जो आगे जाकर कल्याण मन्दिर की भक्तिरस पूर्ण चमत्कार सिद्धि में कारण बना। यह घटना एक ऐसी घटना थी जो अक्सर उनके आत्मस्थैर्य के समय उनकी आंखों में चित्रपट के समान अङ्कित हो जाया करती थी।

(४)

महाकालेश्वर का विशाल प्राङ्गण—जहां करोड़ों की संख्या में आज शैव और शाक्त बैठे हैं, नाना प्रकार के वैदिक यौगिक चमत्कारों का उन्हें गर्व है। वे देखना चाहते हैं कि यह क्षपणक हम से बढ़िया ऐसा कौनसा चमत्कार दिखलाने का दावा कर रहा है, तथाकथित आठों रत्न इसलिये प्रसन्न हैं कि आज उन्हें उनके अपने ही द्वारा पाली हुई ईर्ष्या का साकाररूप देखने का सुयोग प्राप्त हो रहा है। उज्जयिनी नरेश विवेकी और परीक्षा प्रधानी थे। प्राभाविक शक्तियां ही उन्हें अपने वश में कर सकती थीं। हां, तो देदीप्यमान चेहरा अपनी ओर बढ़ता देख मानो शिवमूर्ति निस्तेज पड़ने लगी थी। राजा का संकेत पाकर कपिल द्विज बोला—"तो क्षपणक जी करिये न नमस्कार शिव जी को; देखें आपका आत्मवैभव।"

श्रद्धा वास्तव में बलवती होती है, उसके आगे सोचने या विचारने का कोई मूल्य नहीं। बस आचार्य जी की आंखों में वही चित्तौड़गढ़ का भव्य जिनमन्दिर, उसमें विराजमान वही सौम्यमूर्ति पार्श्वनाथ जी का बिम्ब, वही स्तम्भ और वही चमत्कारी पृष्ठ उस शिवमूर्ति के स्थान में दिखाई देने लगे !! एकाएक उनके मुंह से भक्ति के आवेश में निम्न-श्लोक निकल पड़ा—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रं,
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥

—कल्याणमन्दिर श्लोक नं० ३८

इन भक्तिरस पूर्ण पंक्तियों में कहिये अथवा आचार्य श्री के उस पौद्गलिक वाणी में कहिये, कौन से ऐसे तत्त्व भरे थे, जिन्होंने कि उस समस्त विशाल जनसमूह को एक बारगी ही मन्त्रमुग्ध सा कर लिया। सब के नेत्र उसी एक व्यक्ति पर ही गड़े थे, उस मूर्ति की ओर कोई नहीं देखता था, जिसका कि एक २ परमाणु वीतराग मुद्रा में परिणत होने लग गया था। हां, समुदाय के चर्मचक्षु तो उस समय उस ओर मुड़े जबकि सर्वाङ्ग पूर्ण मुद्रा के प्रकाश पुञ्ज की तेज रश्मियां उनके पलकों से जा भिड़ी और फिर दांतों तले अंगुली दबाने के सिवाय उन्हें रह ही क्या गया था, जो कि वास्तव में दर्शनीय था।

परिणाम यह हुआ कि राजा समेत सभी उपस्थित जनता तत्काल समीचीन जैन-धर्म की अनुयायिनी हो गई। ओंकारेश्वर का विशाल महाकालेश्वर का मन्दिर इसका ज्वलन्त प्रतीक है।

समयानुसार राजा की प्रेरणा पाकर श्री कुमुदचन्द्राचार्य जी ने भक्तिरस से ओतप्रोत इस कलापूर्ण अद्वितीय चमत्कारी कल्याणमन्दिर स्तोत्र की रचना कर जन साधारण का महान कल्याण किया।

भारतवर्ष के अद्वितीय

आध्यात्मिक सन्त का

-शुभाशीर्वाद-

श्री पं० कमलकुमार जी शास्त्री द्वारा कल्याणमन्दिरस्तोत्र का यह संस्करण उत्तम रीति से तैयार किया गया है। आपने अनेक जैन-भंडारों से इसकी सामग्री प्रस्तुत की है श्री पार्श्वनाथ जी का स्तोत्र अनेक विघ्न का विनाशक है, अतः मुझे पूर्ण आशा है कि इसको पढ़कर जनता लाभ उठावेगी।

ता: २५-८-५१
क्षेत्रपाल ललितपुर

—आपका शुभचिन्तक
गणेश वर्णी

श्री पार्श्वनाथाय नमः

कल्याण मन्दिर स्तोत्र

श्रेयसिन्धु कल्याणकर, कृत निज पर कल्याण ।
पार्श्व पंचकल्याणमय, करो विश्व—कल्याण ॥

[1]अभीप्सितकार्य सिद्धिदायक—

कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि-
भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम् ।
संसारसागर-निमज्जदशेषजन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥

यस्य स्वयं सुरगुरु गरिमाम्बुराशेः,
स्तोत्रं सुविस्तृतमति र्न विभु र्विधातुम् ।

१—कल्याणमन्दिर स्तोत्र के श्लोकों के ऊपर जो हेडिंग दिये गये हैं वे देहली की प्रति के ऋद्धि मंत्रों के फलानुसार लिखे गये हैं ।

तीर्थेश्वरस्य 'कमठ' स्मयधूमकेतो–
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥

—([1]युग्मम्)

अनुपम करुणा की सु-मूर्ति शुभ, [2]शिव-मन्दिर अघनाशक मूल ।
भयाकुलित व्याकुल मानव के, अभयप्रदाता अति–अनुकूल ॥
बिन कारन भवि जीवन तारन, भव–समुद्र में [3]यान - समान ।
ऐसे पाद-पद्म प्रभु पारस, के अर्चूं मैं नित अम्लान ॥
जिसकी अनुपम गुण-गरिमा का, अम्बुराशि सा है विस्तार ।
यश-सौरभ सु-ज्ञान आदि का, [4]सुरगुरु भी नहिं पाता पार ॥
हठी कमठ शठ के मद-मर्दन, को जो धूमकेतु-सा शूर ।
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी तीर्थपति की भरपूर ॥

श्लोकार्थः—हे विश्वगुणभूषण ! कल्याणों के मन्दिर, अत्यन्त उदार, अपने और औरों के पापों के नाशक, संसार

१—द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्तं, त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकम् ।
कलापकं चतुर्भिः स्या—त्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम् ॥

अर्थ—जहां दो श्लोकों में क्रिया का अन्वय हो उसे युग्म, तीन श्लोकों में क्रिया का अन्वय हो उसे विशेषक, चार श्लोकों में क्रिया का अन्वय हो उसे कलापक और इसी भांति जहां पांच छह सात आदि श्लोकों में क्रिया का अन्वय हो उसे कुलक कहते हैं ।

नोट—इस स्तोत्र में अन्तिम श्लोक को छोड़ कर सर्वत्र "वसन्ततिलका" छन्द है ।

२—मोक्ष या कल्याण (कल्याणमक्षयस्वर्गे–इति विश्वलोचन कोषे पृ० १०७ श्लोक ४५) ३—जहाज । ४—देवताओं का मन्त्री या इन्द्र के समान बुद्धिमान ।

के दुःखों से डरने वालों के अभयप्रद, अतिश्रेष्ठ संसार-सागर में डूबते हुये प्राणियों के उद्धारक, श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के चरण-कमलों को नमस्कार करके गम्भीरता के समुद्र, जिसकी स्तुति करने के लिये विशाल बुद्धि वाला देवताओं का गुरु स्वयं वृहस्पति भी समर्थ नहीं है, तथा जो प्रतापी कमठ के अभिमान को भस्मीभूत करने के लिये धूमकेतु अर्थात् सपुच्छग्रह (पुच्छलतारा) रूप हैं, उन तेईसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ भगवान का मुझ जैसा अल्पज्ञ स्तवन करता है—यह आश्चर्य है ! ॥ १ ॥ २ ॥

निर्भयकरन परम परधान । भव-समुद्र जलतारन जान ॥
शिवमन्दिर अघहरन अनिन्द । बन्दहुं पास चरन-अरविन्द ॥
कमठमान-भंजन वरवीर । गरिमासागर गुन गम्भीर ॥
सुरगुरु पार लहै नहिं जासु । मै अजान जंपों जस तासु ॥

श्लोक १-२— ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो इट्ठकज्ज संद्धपराणं [1]जिणाणं ॐ ह्रीं अर्हं णमो दव्वंकराणं [2]ओहिजिणाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो भगवओ रिसहस्स तस्स पडिनिमित्तेण चरणपण्णत्ति इन्देण भणामइ यमेण उप्पाडिया जीहा कंठोट्ठ-मुहतालुया खीलिया जो मं भसइ जो मं हसइ दुट्ठदिट्ठीए वज्जसिंखलाए ([3]देवदत्तस्स) मणं हियय कोहं जीहा खीलिया सेलखियाए ल ल ल ल ठः ठः ठः स्वाहा ।

[—भैरव पद्मावती कल्पे अ. [illegible]]

विधि—श्रद्धापूर्वक उक्त मन्त्र को [illegible] बार जपने के पश्चात् प्रतिवादी से वाद-विवाद करने पर जप करने वाले

१—जिन भगवान को नमस्कार हो ।
२—अवधिज्ञानी जिनों को नमस्कार हो । ३—अमुक[illegible]

की विजय होती है। निश्चयपूर्वक प्रतिवादी का मुख बन्द हो जाता है और उसका पराजय होता है।

ॐ ह्रीं कमठस्य य धूमकेतूपमाय श्रीजिनाय नमः।

The poet declares his intention of praising Lord Parsvanatha :-

Having bowed to the lotus-feet of that J i n e s v a r a (Tirthankara, Lord Parsvanatha), who is the ocean of greatness, whom (even) the preceptor of Gods (Brihaspati) himself in spite of his supremely wide knowledge is unable to praise and who is a comet(or fire) in destroying the arrogance of Kamatha– the feet which are the temple of bliss, which are sublime, which can destroy sins and give safety to the terrified, which are fault less and are (i. e., serve the purpose of) a life-boat for all beings sinking in the ocean of existence, I will indeed compose a hymn (in honour) of Him. (1–2)

जलभय-निवारक—

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ? ।
धृष्टोऽपि कौशिकशिशु यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ? ॥३॥

अगम अथाह सुखद शुभ सुन्दर, सत्स्वरूप तेरा अखिलेश !।
क्यों करि कह सकता है मुझसा, मन्दबुद्धि मूरख करुणेश !।।
सूर्योदय होने पर जिसको, दिखता निज का [1]गात नहीं।
[2]दिवाकीर्ति क्या कथन करेगा, [3]मार्तण्ड का नाथ ! कहीं ?।।

श्लोकार्थ—हे सप्तभयविनाशक देव ! आपके गुणों का सामान्य रूप से भी वर्णन करने के लिये हम सरीखे मन्दबुद्धि वाले पुरुष कैसे समर्थ हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं हो सकते। जैसे जिसे दिन में स्वयं नहीं सूझता ऐसा उलूक (उल्लू) पक्षी का बच्चा धीट होकर भी क्या सूर्य के जगमगाते बिम्ब का वर्णन कर सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं कर सकता ॥३॥

प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह। क्यों हमसे इह होय निवाह ॥
ज्यौ दिन अंध उलूको [4]पोत। कहि न सकै रवि-किरन उदोत ॥

३—ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हणमो समुद्दभयसामणबुद्धीणं [5]परमोहिजिण णं
मंत्र—ॐ ह्रीं ह्रक्रीं बगलामुखी देवी नित्ये ! क्लिन्ने ! मदद्रवे ! मदनातुरे ! वषट् स्वाहा।

विधि—पुष्य नक्षत्र के योग में इस महामन्त्र का २१ दिन तक १२००० जाप पूरा करने से तीनों लोक वशीभूत होते हैं। ॐ ह्रीं त्रैलोक्याधीशाय नमः।

He points out his incompetency to under take such a work.

Oh Lord ! how can persons like us succeed in giving even a general outline

---

१—शरीर। २—उल्लू नाम का पक्षी (दिवाकीर्तिःउलूके स्यात्—वि०लो० कोष पृ० १५५ श्लोक २१५)। ३—सूर्य। ४—बच्चा। ५—परमावधि-ज्ञानधारी जिनों को नमस्कार हो।

of Thy nature ? Is Indeed a young-one of an owl blind by day capable of describing the orb of the hot-rayed one (sun), however presumptuous it may be ? (3)

असमयनिधननिवारक—

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मा—
न्मीयेत केन जलधे र्ननु रत्नराशिः ? ॥४॥

यद्यपि अनुभव करता है नर, [1]मोहनीय विधि के क्षय से ।
तौ भी गिन न सकै गुण तुव सब, [2]मोहेतर कर्मोदय से ॥
[3]प्रलयकालमें जब जलनिधिका, बह जाता है सब पानी ।
रत्नराशि दिखने पर भी क्या, गिन सकता कोई ज्ञानी ? ॥

श्लोकार्थ—हे अनन्तगुणनिधे ! जैसे प्रलयकाल के समय सब पानी निकल जाने पर भी साफ दिखने वाले समुद्र के रत्नों की गणना नहीं हो सकती, वैसे ही मोहाभाव से प्रतिभासमान आपके गुणों की गिनती भी किसी भी मनुष्य द्वारा नहीं हो सकती; क्योंकि आपके गुण अनन्तानन्त हैं ॥४॥

मोह हीन जानै मन माहि । तोउ न तुम गुन वरनै जाहि ॥
प्रलय-पयोधि करै जल [4]वौन । प्रगटहि रतन गिनै तिहि कौन ॥

१—वह कर्म जो आत्मा को भुलाये रखता है और सद्बोध प्राप्त नहीं होने देता । २—ज्ञानावरणादि अन्य कर्म । ३—कल्पान्तकाल या परिवर्तनकाल । ४—वमन ।

४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अकालमिच्चुवारयाणं [1] सव्वोहिजिणाणं।

मन्त्र—ॐ नमो भगवति ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मन्त्र को ९ वर्ष तक हर वर्ष लगातार ४० रविवार के दिन प्रति रविवार को १००० बार जपने से गर्भपात और अकालमरण नहीं होता।

ॐ ह्रीं सर्वपीड़ानिवारकाय श्रीजिनाय नमः।

He suggests that even the omniscient cannot enumerate Thy virtues :-

Oh Lord ! a mortal is surely incapable of counting Thy merits, in spite of his realizing them, owing to the annihilation of his infatution; (for), who can measure the heap of jewels, though obvious, in the ocean emptied of waters at the time of the destruction of the universe ? (4)

प्रच्छन्नधनप्रदर्शक—

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ? ॥५॥

१—सर्वावधिज्ञानधारी जिनों को नमस्कार हो।

तुम अतिसुन्दर शुद्ध अपरिमित, गुणरत्नों की खानि स्वरूप।
वचननि करि कहिने को [1]उमगा, अल्पबुद्धि मै तेरा [2]रूप॥
यथा मन्दमति लघु शिशु अपने, दोऊ कर को कहै पसार।
जल-निधि को देखहु रे मानव, है इसका इतना [3]आकार॥

श्लोकार्थ—हे गुणगणाधिप ! जैसे शक्तिहीन अबोध बालक सहज स्वभाव से अपनी पतली छोटी २ दोनों भुजाओं को पसार कर विशाल समुद्र के विस्तार (फैलाव) को बतलाने का असफल प्रयत्न करता है; ठीक वैसे ही हे भगवन ! मैं महामूर्ख तथा जड़बुद्धि वाला होकर भी अपूर्व अपरिमित गुणों से सुशोभित आपके सच्चिदानन्द स्वरूप की अमर्यादित महिमा का वर्णन करने के लिये उद्यत होगया हूं ॥५॥

तुम असंख्य निर्मल गुण खानि । मैं मतिहीन कहौं निज वानि ॥
ज्यौं बालक निज बाहु पसार । सागर परिमित कहै विचार ॥

५ ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो गोधणवुहकराणं [4]अणंतोहिजिणाणं।

मन्त्र-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूँ अर्हं नमः।

विधि—प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक १०८ बार ऋद्धि और मंत्र की जाप जपने से गुमी हुई मवेशी, लक्ष्मी तथा धन का लाभ होता है ।

ॐ ह्रीं सुखविधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नमः।

He mentions one by one the reasons of commencing the hymn :—

Oh Lord ! I, though dull-witted, have started to sing a song of Thine, the

---

१—उत्साहित हुआ । २—स्वरूप या स्वभाव । ३—विस्तार या फैलाव । ४—अनन्त अवधिज्ञान वाले जिनों को नमस्कार हो ।

mine of innumerable resplendent virtures. (For) does not even a child describe according to its own intellect the vastness of the ocean by stretching its arms ? (5)

सन्तानसम्पत्ति प्रसाधक—

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ! ।
जाता तदेव-मसमीक्षित कारितेयं,
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

हे प्रभु ! तेरे अनुपम सब गुण, मुनिजन कहने में असमर्थ ।
मुझसा मूरख औ अबोध क्या, कहने को हो सकै समर्थ ॥
पुनरपि भक्तिभाव से प्रेरित, प्रभु-स्तुति को बिना विचार ।
करता हूं, पंछी ज्यों बोलत, निश्चित बोली के अनुसार ॥

श्लोकार्थ—हे गुणगणालंकृतदेव ! आपके जिन अपरिमित गुणों का वर्णन करने में बड़े २ योगी और धुरन्धर विद्वान तक अपने आपको असमर्थ मानते हैं; उन गुणों का वर्णन मुझ जैसा अल्पज्ञ मानव कैसे कर सकता है ? अत: स्तवन प्रारम्भ करने के पूर्व अपनी शक्ति को न तौल कर मैंने आपकी जो स्तुति प्रारम्भ की है, वास्तव में मेरा यह प्रयत्न बिना विचारे ही हुआ, फिर भी मानवजाति की वाणी बोलने में असमर्थ पशु पक्षी अपनी ही बोली में बोला करते हैं, वैसे ही मैं भी अपनी बोली में आपकी प्रभावशालिनी, पुण्य-दायिनी स्तुति करने के लिये प्रवृत्त होता हूँ ॥ ६ ॥

जो जोगीन्द्र करहि तप खेद । तऊँ न जानहिं तुम गुन भेद ॥
भगतिभाव मुझ मन अभिलाख । ज्यौं पंखी बोलहि निज भाख[1] ॥

६ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो पुत्तइत्थिकराणं[2] कोट्ठबुद्धीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवति ! अम्बिके ! अम्बालिके ! यक्षीदेवि यूँ यौं ब्लैं ह्स्क्ली ब्लं ह्सौं रः रः रः रः रां रां ह्रिष्ठि प्रत्यक्षम् मम देवदत्तस्य वश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

(भैरवपद्मावतीकल्पे अ० ६ श्लो० २)

विधि—इस मंत्र से २१ वार दतौन मंत्रित कर उसी से दांत साफ करे पश्चात् २१ वार श्रद्धापूर्वक मंत्र का जाप जपने से इच्छित मनुष्य वश में होता है ।

ॐ ह्रीं अव्यक्तगुणाय श्रीजिनाय नमः ।

Oh Lord ! whence can it be within my scope to describe Thy merits, when even the masterly saints fail to do so ? Therefore, this attempt of mine is a thoughtless act; or why, even birds do speak in their own tongue (6)

अभीप्सितजनाकर्षक—

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन ! संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहतपान्थजनान् निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

१—भाषा । २—कोष्ठबुद्धि धारी जिनों को नमस्कार हो ।

है अचिन्त्य महिमा स्तुति की, वह तो रहे आपकी दूर।
जब कि बचाता भव-दुःखों से, मात्र आपका 'नाम' जरूर॥
ग्रीष्म कु-ऋतु के तीव्र ताप से, पीड़ित पन्थी[१] हुये अधीर।
पद्म-सरोवर दूर रहे पर, तोषित करता सरस-समीर[२]॥

श्लोकार्थ—हे सातिशयनामन्! जैसे ग्रीष्मकाल में असह्य प्रचण्ड धूप मे व्याकुल राहगीरों को केवल कमलों से युक्त सरोवर ही सुखदायक नहीं होते; अपितु उन जलाशयों की जल-कण मिश्रित ठंडी २ झकोरें भी सुखकर प्रतीत होती हैं। वैसे ही हे प्रभो! आपका स्तवन ही प्रभावशाली नहीं है, वरन आपके पवित्र 'नाम' का स्मरण भी जगत के जीवों को संसार के दारुण दुःखों से बचा लेता है। वास्तव में प्रभु के गुणगान और उनके नाम की महिमा अचिन्त्य है॥७॥

तुम जस महिमा अगम अपार। नाम एक त्रिभुवन आधार।
आवै पवन पद्मसर[३] होय। ग्रीषम तपत निवारै सोय॥

७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अभिट्ठसाधयाणं बीजबुद्धीण[४]।

मंत्र—ॐ नमो भगवओ अरिट्ठणेमिस्स वंधेण बंधामि रक्खसाणं भूयाणं खेयराणं चोराणं दाढाणं साइणीणं महोरगाणं अण्णे जेवि दुट्ठा संभवन्ति तेसिं सव्वेसिं मणं मुहं गइं दिट्ठीं बंधामि धणु धणु महाधणु जः जः (जः?) ठः ठः ठः हुं फट् (स्वाहा?)

—(भैरवपद्मावतीकल्पे अ० ७ श्लोक १७)

विधि—गहन वन के कठिन मार्ग पर चलते हुए भय उत्पन्न होने पर इस मंत्र द्वारा कुछ कंकरों को मंत्रित कर

१—राहगीर। २—हवा। ३—कमलयुक्त सरोवर।
४—बीजबुद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो।

चारों दिशाओं में फेंकने से चोर सिंह सर्पादि का भय दूर होता है।

ॐ ह्रीं भवाटवीनिवारकाय श्रीजिनाय नमः।

God's name brings to an end the cycle of births and deaths:—

Oh Jina ! Let Thy hymn whose sublimity is inconceivable be out of consideration; (for), even Thy name saves the (living beings of the) three worlds from (this) worldly existence. Even the cool breeze of a lotus-lake gives delight in summer to the travellers tormented by the immense heat (of the sun). (7)

कुपितोपदंशविनाशक—

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्य-भाग—
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥

मन-मन्दिर में वास करहिं जब, अश्वसेन वामा नन्दन।
ढीले पड़ जाते कर्मों के, क्षण भर में दृढ़तर बन्धन॥
चन्दन के विटपों[1] पर लिपटे, हों काले विकराल भुजङ्ग[2]।
वन-मयूर के आते ही ज्यों, होते उनके शिथिलित अङ्ग॥

१—वृक्षों। २—सर्प।

श्लोकार्थः—हे कर्मबन्धनविमुक्त ! जिनेश ! जैसे जंगली मयूरों के आते ही मलयागिरि के सुगन्धित चन्दन के सघन वृक्षों में कौंडराकार लिपटे हुए भयङ्कर भुजङ्गों की दृढ़ कुण्डलियाँ तत्काल ढीली पड़ जाती हैं; वैसे ही संसारी जीवों के मन-मन्दिरों के उच्च सिंहासनों पर आपके विराजमान होने पर—आपका 'नाम-मंत्र' स्मरण करने पर उनके ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के कठोरतम बन्धन क्षणमात्र में अनायास ही ढीले पड़ जाते हैं ॥ ८ ॥

तुम आवत भविजन मन माहिं, । कर्म निबंध शिथिल हो जाहिं ॥
ज्यों चन्दन तरु बोलहिं मोर । डरहि भुजङ्ग लगे चहुँ ओर ॥

८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गहदहारीणं पादाणुसारीणं[1] ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते पार्श्वनाथतीर्थङ्कराय हंसः महाहंसः पद्महंसः शिवहंसः कोपहंसः उरगेशहंसः पक्षि महाविषभक्षि हूँ फट् (स्वाहा ?) ।

—(भैरवपद्मावतीकल्पे अ० १० श्लो० २६)

विधि—इस मंत्र को प्रतिदिन १०८ बार जप कर सिद्ध करे। पश्चात् सर्प डसे आदमी पर प्रयोग करे। अर्थात् मंत्र पढ़ते हुए झाड़ा देने से उसका जहर दूर होता है।

ॐ ह्रीं कर्माहिबन्धमोचनाय श्रीजिनाय नमः ।

He mentions the result of contemplating God.

Oh Lord ! when Thou art enshrined in the heart by a living being, his firm

---

१—पदानुसारी ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो ।

fetters of Karmans, however tight they may be, become certainly loose within a moment like the serpent-bands of a sandal tree, immediately when a wild peacock arrives at its centre. (8)

सर्पवृश्चिकविषविनाशक—

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र !
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥९॥

बहु विपदाएँ प्रबल वेग से, करें सामना यदि भरपूर ।
प्रभु-दर्शन से निमिषमात्र में, हो जाती वे चकनाचूर ॥
जैसे गो-पालक[1] दिखते ही, पशु-कुल को तज देते चोर ।
भयाकुलित हो करके भागें, सहसा समझ हुआ अब भोर[2] ॥

श्लोकार्थ—हे संकटमोचन ! जिस तरह प्रचण्ड सूर्य, पराक्रमी भूपाल तथा बलिष्ठ गो-पालकों (ग्वालों) के दिखते ही भय से शीघ्र भागते हुए चोरों के पंजे से पशु-धन छूट जाता है, उसी तरह हे कृपालुदेव ! आपकी वीतराग मुद्रा को देखते ही मानव महा-भयङ्कर सैकड़ों संकटों से तत्काल छुटकारा पाते हैं ।

तुम निरखत जन दीनदयाल । संकट तें छूटहिं तत्काल ॥
ज्यों पशु घेर लेंहिं निशि चोर । ते तज भागहिं देखत भोर ॥

१—गायों का स्वामी (ग्वाल), तेजस्वी सूर्य तथा प्रतापी राजा । २—प्रातःकाल ।

६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विसहरविसविणासयाणं[1] संभिण्णसोदाराणं ।

मंत्र—ॐ इंदसेणा महाविज्जा देवलोगाओ आगया दिट्ठिबंधणं करिस्सामि भडाणं भूआणं अहिणं दाढीणं सिंगीणं चोराणं चारियाणं जोहाणं वग्घाणं सिहाणं भूयाणं गंधव्वाणं महोरगाणं अन्नेसिं (अण्णे वि ?) दुट्ठसत्ताणं दिट्ठिबंधणं मुहबंधणं करेमि ॐ इंदनरिंदे स्वाहा ।

विधि—दिवाली के दिन निराहार रह कर १०८ बार इस मंत्र का जाप करे । पश्चात् मार्ग में चलते हुए इस मंत्र को २१ बार बोलने से सब प्रकार का भय तथा उपद्रवों का नाश होता है ।

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवहरणाय श्रीजिनाय नमः ।

He points out the advantage of seeing God.

Oh Lord of the Jinas ! No sooner art Thou merely seen by persons, than they are indeed spontaneously released from hundreds of horrible adversities, like the beasts from the thieves that are fleeing away at the mere sight of (1) the sun resplendent with lustre, (2) the king or (3) the cowherd shining with valour. (9)

१—सम्भिन्नश्रोतृत्व नामक ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो ।

तस्कर भय विनाशक—

त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेव नून—
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥

भक्त आपके भव-पयोधि[1] से, तिर जाते तुमको उरधार[2] ।
फिर कैसे कहलाते जिनवर, तुम भक्तों की दृढ़ पतवार ? ॥
वह ऐसे, जैसे तिरती है, चर्म-मसक जल के ऊपर ।
भीतर उसमें भरी वायु का, ही केवल यह विभो ! असर[3] ॥

श्लोकार्थ—हे भवपयोधितारक ! जिस तरह अपने भीतर भरी हुई पवन के प्रभाव से चर्म-मसक पानी के ऊपर तैरती हुई किनारे लग जाती है, उसी तरह मन-वचन-काय से आपको अपने मन-मन्दिर में विराजमान कर आपका ही रातदिन चिन्तवन करने वाले भव्यजन संसार-सागर से वेखटके (बिना बाधा के) पार हो जाते हैं ।

भावार्थ—भव्यजन आपको अपने हृदय में धारण करके संसार-सागर से तिर जाते हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि भव्यजन आप (भगवान) को तारने वाले हैं । यह तो उसी तरह की बात है जिस तरह से मसक अपने भीतर भरी हुई हवा के प्रभाव से पानी में तैरती है । अर्थात् मसक को तिरने में जैसे उसमें भरी हुई हवा कारण है, वैसे ही भव-समुद्र से भव्यजनों के तिरने में उनके द्वारा बार २ किया

१—संसार समुद्र । २—हृदय में धारण करके । ३—प्रभाव ।

गया आपका चिन्तवन ही कारण है। इसलिये हे भगवन्! आप भवपयोधितारक कहलाते हैं।

तूं भविजन तारक किम होह। ते चित धारि तिरहिं लै तोह॥
यह ऐसै कर जान स्वभाउ। तिरै मसक ज्यौं गर्भितवाउ[1]॥

१० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तक्खरभयपणासयाणं उजुमदीणं[2]।

मंत्र—ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी चक्रधारिणी जलजलनिहि पारउतारणि जलं थंभय दुष्टान् दैत्यान् दारय दारय असिवोपसमं कुरु कुरु ॐ ठः ठः (ठः ?) स्वाहा।

विधि—गुरुवार के दिन पुष्य नक्षत्र का योग पड़ने पर इस मंत्र को शुद्ध हृदय से १०८ बार जप कर सिद्ध करे। पश्चात् कार्य पड़ने पर २१ बार मंत्र का आराधन करने से हर तरह के पानी का भय नष्ट होता है।

ॐ ह्रीं भवोदधितारकाय श्रीजिनाय नमः।

He suggests the advantage of constant contemplation about God.

Oh Jina! How art Thou the saviour of mundane beings when (on the contrary) they themselves carry Thee in their hearts while crossing (the ocean of existence)? Or indeed, that a leather bag (for holding water) floats in water,

---

१—हवा। २—ऋजुमति मनःपर्यय-ज्ञानधारी जिनों को नमस्कार हो।

is certainly the effect of the air inside it. (10)

जलाग्निभयविनाशक—

यस्मिन् हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाऽथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ? ॥११॥

जिसने हरिहरादि देवों का, खोया यश-गौरव-सन्मान ।
उस मन्मथ[1] का हे प्रभु ! तुमने, क्षण में मेट दिया अभिमान ॥
सच है जिस जल से पल भर में, दावानल[2] हो जाता शान्त ।
क्या न जला देता उस जल को ?, बडवानल[3] होकर अश्रान्त ॥

श्लोकार्थ—हे अनङ्गविजयिन । जिस काम ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि प्रख्यात पुरुषों को पराजित कर जन साधारण की दृष्टि में प्रभावहीन बना दिया है। हे जितेन्द्रिय जिनेन्द्र ! उसी काम (विषय वासनाओं) को आपने क्षण भर में नष्ट कर दिया, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि जो जल प्रचण्ड अग्नि को बुझाने की सामर्थ्य रखता है, वह जल जब समुद्र में पहुँच कर एकत्रित हो जाता है, तब क्या वह अपने ही उदर में उत्पन्न हुए बडवानल (सामुद्रिक अग्नि) द्वारा नहीं सोख लिया जाता ? अर्थात् नहीं जला दिया जाता ? ॥ ११ ॥

१—कामदेव । २—जंगल की भयानक अग्नि । ३—सामुद्रिक अग्नि जो समुद्र के मध्यभाग से उत्पन्न होकर अपार जलराशि का शोषण कर लेती है ।

भावार्थ—जैसे कि जल अग्नि को बुझाता है; लेकिन उसी जल को बडवानल सोख लेता है; वैसे ही हे भगवन् ! जिस काम ने हरिहादिक देवों को जीत लिया है, उसी काम को आपने क्षण भर में पराजित किया है।

जिन सब देव किये वस वाम । तैं छिन में जीत्यो सो काम ॥
ज्यों जल करै अग्निकुलहानि । बड़वानल पीवै सो पानि ॥

११ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वारियालणबुद्धीणं विउलमदीणं[१]।

मंत्र—ॐ नमो भगवति अग्निस्तम्भिनि ! पञ्चदिव्योत्तरणि ! श्रेयस्करि ! ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वकामार्थसाधनि ! ॐ अनलपिङ्गलोर्ध्वकेशिनि ! महाधिव्याधिपतये स्वाहा।

विधि—इस महामंत्र को भोजपत्र पर केशर अथवा हरताल से लिखकर उसे बढ़ती हुई अग्नि में डालने से तज्जन्य उपद्रव शान्त होता है।

ॐ ह्रीं हुतभुग्भयनिवारकाय श्री जिनाय नमः। श्री फलवर्द्धिपाश्व (नाथ ?) स्वामिने नमः।

He establishes the pre-eminence of Lord Parsva in virtue of His dispassion.

Even that Cupid (the husband of Rati) who baffled even Hara (Siva) and others was destroyed within a moment by Thee. (For), is not even that water which extinguishes (earthly) conflag-

rations swallowed up by the irresistible submarine fire ? (11)

अग्निभय विनाशक—

स्वा[2] मिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्ना—
स्त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः॥१२॥

छोटी सी मन की कुटिया में, हे प्रभु ! तेरा ज्ञान अपार।
धार उसे कैसे जा सकते, भविजन भव-सागर के पार ?॥
पर लघुता[3] से वे तिर जाते, दीर्घभार से डूबत नाहिं।
प्रभु की महिमा ही अचिन्त्य है, जिसे न कवि कह सकें बनाहिं॥

श्लोकार्थ—हे त्रैलोक्यतिलक ! जिसकी तुलना किसी दूसरे से नहीं दी जा सकती, अथवा विश्व में जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, ऐसे अतिगौरव को प्राप्त (अनंत गुणों के बोझीले भार से युक्त) आपको हृदय में धारण कर यह जीव संसार-सागर से अतिशीघ्र कैसे तर जाता है ? अथवा आश्चर्य की बात है; कि महापुरुषों की महिमा चिन्तवन में नहीं आ सकती॥ १२॥

तुम अनन्त गरुवा[4] गुन लिये। क्योंकर भक्ति धरूँ निज हिये।
ह्वै लघु रूप तिरहिं संसार। यह प्रभु महिमा अकथ अपार॥

१—बिपुलमतिमनःपर्यय ज्ञानी जिनों को नमस्कार हो। २—स्वामिन्नतुल्यगरिमाणमपि इत्यपि पाठः। ३—सरलता से। ४—महान।

१२—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणलभयवज्जयाणां दसपुव्वीणं[1]।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः असिआउसा वांछितं मे कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस महामंत्र का १२५००० बार जप करने से समस्त मनोवांछित कार्यों की सिद्धि होती है।

ॐ ह्रीं सर्वमनोवांछितकार्यसाधकाय श्रीजिनाय नमः।

Power of the great is unimaginable.

Oh Master! How do the beings who resort to Thee soon cross the ocean of births (and deaths) with the greatest ease, when they carry in their heart, Thee, that art excessively heavy (dignified)? Or why, prowess of the great is incomprehensible. (12)

जलमिष्टकारक—

क्रोधस्त्वया यदि विभो ! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा [2]वद कथं किल कर्मचौराः ? ।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिराऽपि लोके,
नीलद्रुमाणि विपनानि न किं हिमानी ? ॥१३॥

क्रोध-शत्रु को पूर्व [3]शमन कर, शान्त बनायो मन-आगार।
कर्म-चोर जीते फिर किस विध, हे प्रभु अचरज अपरम्पार॥

१—दशपूर्वधारी जिनों को नमस्कार हो। २—बत-इत्यपि पाठः। ३—नाश कर या खपा कर।

लेकिन मानव अपनी आंखों, देखहु यह [1]पटतर संसार।
क्या न जला देता वन-उपवन, हिम-सा शीतल विकट [2]तुषार॥

श्लोकार्थ—हे कोपदमन! यदि आपने अपने क्रोध को पहिले ही नष्ट कर दिया तो फिर आपही बतलाइये कि आपने क्रोध के बिना कर्मरूपी चोरों का कैसे नाश किया? अथवा इस लोक में वर्फ (तुषार) एकदम ठंडा होने पर भी क्या हरे-हरे वृक्षों वाले वन-उपवनों को नहीं जला देता है? अर्थात् जला ही देता है॥१३॥

क्रोध निवार कियौ मन शान्त। कर्म सुभट जीते किहिं भांत?॥
यह पटतर देखहु संसार। [3]नील विरख ज्यौं दहै तुषार॥

१३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो रिक्खभयवज्जयाणं [4]चोद्दसपुव्वीणं

मंत्र—ॐ ह्रीं असिआउसा सर्वदुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय अंधय अंधय मुकय मुकय मोहय मोहय कुरु कुरु ह्रीं दुष्टान् ठः ठः ठः स्वाहा।

विधि—पूर्व दिशा की ओर मुख करके किसी एकान्त स्थान में बैठकर ८ या २१ दिन तक प्रतिदिन मुट्ठी बांध कर इस मंत्र का ११०० वार जप करने से सब तरह के दुष्ट-क्रूर व्यन्तरों के कष्टों से मुक्ति होती है।

ॐ ह्रीं कर्मचौरविध्वंसकाय श्रीजिनाय नमः।

How couldst Thou indeed (manage to) destroy Karman-thieves, when Thou, oh Omnipresent one! hadst at the very

---

१—दृष्टान्त। २—पाला। ३—हरे वृक्ष। ४—चौदह पूर्वधारी जिनों को नमस्कार हो।

outset annihilated anger ? Or why, does not the mass of snow though cold burn forests having dark-blue (or fig) trees ? (13)

शत्रुस्नेह जनक—

त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोषदेशे ।
पूतस्य निर्मलरुचे र्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य [1]सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

शुद्ध स्वरूप अमल अविनाशी, परमातम सम ध्यावहि तोय ।
निज मन [2]कमल-कोप मधि ढूंढहि, सदा साधु तजि मिथ्या-मोह ॥
अतिपवित्र निर्मल सु-कांति युत, कमलकर्णिका बिन नहिं और ।
निपजत कमल बीज उसमें ही, सब जग जानहि और न ठौर ॥

श्लोकार्थ—हे तरण-तारण ! महर्षिजन परमात्मस्वरूप आपको सदा अपने हृदयाम्बुज के मध्यभाग में अपने ज्ञानरूपी नेत्र द्वारा खोजते हैं । ठीक ही है कि जिस प्रकार पवित्र, निर्मल कान्तियुक्त कमल के बीज का उत्पत्तिस्थान कमल की कर्णिका ही है, उसी प्रकार शुद्धात्मा के अन्वेषण का स्थान हृदय-कमल का मध्यभाग ही है ॥१४॥

मुनिजन हिये कमल निज टोहि । सिद्धरूपसम ध्यावहिं तोहि ॥
कमलकर्णिका बिन नहिं और । कमल-बीज उपजन की ठौर ॥

१४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो भंसणभयभञ्जणाणं [3]अट्ठंग-महाणिमित्तकुसलाणं ।

१—सम्भवि इत्यपि पाठः । २—खजाना । ३—अष्टांग महा-निमित्तविद्या में प्रवीण जिनों को नमस्कार हो ।

मंत्र—ॐ नमो मेरु महामेरु, ॐ नमो गौरी महागौरी, ॐ नमो काली महाकाली, ॐ (नमो) इंदे महाइंदे, ॐ (नमो) जये महाजये, (ॐ नमो विजये महाविजये), ॐ नमो पण्णसमणि महापण्णसमिणि अवतर अवतर देवि अवतर (अवतर) स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र का ८००० बार जप करके मंत्र सिद्ध करे। तथा आईना को उक्त मंत्र से मंत्रित कर सफेद स्वच्छ पवित्र कपड़े पर रखे, फिर उसके सामने किसी कुँवारी कन्या को सफेद वस्त्र पहिना कर बिठावे पश्चात् उससे जो बात पूंछोगे उसका वह सच्चा उत्तर देगी।

ॐ ह्रीं हृदयाम्बुजान्वेपिताय (श्रीजिनाय) नमः।

Oh Jina ! the Yogins always search after Thee, the supreme soul in the interior of their heart-lotus-bud. Or why, is there any other abode for the pure and the unsulliedly splendid lotus-seed than the pericarp ? (14)

चोरिकागत द्रव्य दायक—

ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपल – भावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥

जिस कुधातु से सोना बनता, तीव्र अग्नि का पाकर ताव।
शुद्ध स्वर्ण हो जाता जैसे, छोड़ उपलता पूर्व [1]विभाव॥

१—विकृत अवस्था।

वैसे ही प्रभु के सु-ध्यान से, वह परिणति आ जाती है।
जिसके द्वारा देह त्याग, परमात्मदशा पा जाती है॥

श्लोकार्थ—हे अलौकिकज्ञानपुंज! जैसे संसार में जिन धातुओं से सोना बनता है, वे नाना प्रकार की धातुएँ तेज अग्नि के ताव से अपने पूर्व पाषाणरूप पर्याय को छोड़कर शीघ्र स्वर्ण हो जाती है, वैसे ही आपके ध्यान से संसारी जीव क्षणमात्र में शरीर को छोड़ कर परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

जब तुह ध्यान धरै मुनि कोय। तब विदेह परमातम होय॥
जैसे धातु शिला तन त्याग। कनक स्वरूप धवै जब आग॥

१५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खरधणप्पयाणं विउव्वणपत्ताण[1]।

मन्त्र—ॐ ह्रीं नमो लोए सव्वसाहूणं, ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं, ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं, ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं, ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं, एकाहिक, द्व्यहिक, चातुर्थिक, महाज्वर, क्रोधज्वर, शोकज्वर, भयज्वर, कामज्वर, कलितरव, महावीरान्, बंध बंध ह्रां ह्रीं फट् स्वाहा।

विधि—इस अनादिनिधन महामन्त्र का मन में स्मरण करते हुए नूतन श्वेत वस्त्र के छोड़ में गांठ बांधे, उसको गूगल तथा घी की धूनी देवे; तदुपरान्त उस वस्त्र को ज्वर पीड़ित रोगी को उढ़ावे। मन्त्रित गांठ रोगी के शिर के नीचे दबाने से सब तरह के ज्वर दूर होते हैं और रोगी को सुख की नींद आती है।

ॐ ह्रीं जन्ममरणरोगहराय (श्रीजिनाय) नमः।

१—वैक्रियिक ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो।

Meditation of Jina leads to equality with Him.

Oh Lord of the Jinas ! by meditating upon Thee, mundane beings attain in a moment the supreme status leaving aside their body, as is the case in this world with pieces of ore which soon cease to be stones and become gold by the application of severe heat. (15)

गहन वन-पर्वत भय विनाशक—

अन्तः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं.
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ? ।
एतत् स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि.
यद् विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥

जिस तन से भवि चिन्तन करते, उस तन को करते क्यों नष्ट ? ।
अथवा ऐसा ही स्वरूप है, है दृष्टान्त एक उत्कृष्ट ॥
जैसे [1]बीचवान बन सज्जन, बिना किये ही कुछ [2]आग्रह ।
झगड़े की जड़ प्रथम हटाकर, शान्त किया करते [3]विग्रह ॥

श्लोकार्थ—हे देवाधिदेव ! जिस शरीर के मध्य में स्थित करके भव्यजन सदैव आपका ध्यान करते हैं, उस शरीर को ही आप क्यों नाश करा देते हो ? जिस शरीर में आपका ध्यान किया जाता है, आपको उसकी रक्षा करना चाहिये, परन्तु आप इससे विपरीत करते हैं। अथवा ठीक ही है, कि

१—मध्यस्थ । २—अनुरोध । ३—विद्वेष या आपसी कलह ।

मध्यस्थ महानुभाव विग्रह (शरीर और कलह) को शान्त कर देते हैं। अतः आप भी ध्यान के समय ध्याता के शरीर के मध्य में स्थित होकर विग्रह अर्थात् शरीर को नष्ट कर देते हो अर्थात् आपके ध्यान से शरीर छूट जाता है और आत्मा मुक्त हो जाता है ॥१६॥

जाके मन तुम करहु निवास । विनस जाय क्यों विग्रह तास ॥
ज्यौं महन्त विच आवै कोय । विग्रह मूल निवारै सोय ॥

१६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो गहणवणभयपणासयाणं [1]विज्जाहराणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं पादौ रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं कटिं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं नाभिं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं हृदयं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं नमो लोए सव्व-साहूणं ब्रह्माण्ड रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं एसो पंच [2]णमुक्कारो शिखां रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं सव्वपावप्पणासणो आसनं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं आत्मरक्षा पररक्षा हिलि-हिलि मातंगिनि स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस महामंत्र का प्रतिदिन जाप करने से कामाणादि कर्मों का दोष दूर होता है।

ॐ ह्रीं विग्रहनिवारकाय श्रीजिनाय नमः।

Oh Jina! How is it that Thou destroyest that very body of the Bhavyas in the interior of which they enshrine Thee? Or why, this is the nature of an

---

१—विद्याधारी जिनों को नमस्कार हो। २—णमोयारो इत्यपि पाठः।

arbitrator (one who remains impartial); for, great personages bring the discord (the body) to an end (or this is the nature; for, great persons who are impartial. remove the quarrel). (16)

युद्धविग्रह विनाशक—

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या,
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं,
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥१७॥

हे जिनेन्द्र तुम में अभेद रख, योगीजन निज को ध्याते ।
तव प्रभाव से तज विभाव वे, तेरे ही सम हो जाते ॥
केवल जल को दृढ़-श्रद्धा से, मानत है जो सुधा समान ।
क्या न हटाता विष विकार वह, निश्चय से करने पर पान ? ॥

श्लोकार्थ—हे जिनेन्द्रदेव ! जैसे पानी में " यह अमृत है " ऐसा विश्वास करने से मंत्रादि के संयोग से वह पानी भी विष विकारजन्य पीड़ा को नष्ट कर देता है। वैसे ही इस संसार में योगीजन अभेदबुद्धि से जब आपका ध्यान करते हैं तब वे अपने आत्मा को आपके समान चिन्तवन करने से आप ही के समान हो जाते हैं ॥ १७ ॥

करहिं विबुध जे आतम ध्यान । तुम प्रभाव तें होय निदान ॥
जैसे नीर सुधा अनुमान । पीवत विषविकार की हान ॥

१७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धिणासयाणं चारणाणं[1] ।

१—चारण ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो ।

मंत्र—ॐ यः यः सः सः हः हः वः वः उरुरिल्लय रुह (हु?) रुद्दान्त ॐ ह्रीं पार्श्वनाथाय दह दह दुष्टनागविषं क्षिप ॐ स्वाहा।

(श्रीपार्श्वनाथस्तोत्रे गा० १६ मं० चि० पृ० ७१)

विधि—इस मन्त्र से ७ बार जल मंत्रित कर जिस जगह सर्प ने काटा हो उस जगह छिड़कने से तथा उसी मंत्रित जल को पिलाने से सर्प का विष नाश होता है। अन्य विषैले जन्तुओं के विष का असर भी दूर होता है।

ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपध्येयाय श्रीजिनाय नमः।

Efficacy of meditation is extra-ordinary

Oh Lord of the Jinas ! this soul, when meditated upon by the talented as non-distinct from Thee attains to Thy prowess in this world. Does not even water when looked upon as nectar verily destroy the effect of poison ? (17)

सर्पविष विनाशक—

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो ! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।
किं काचकामलिभिरीश ! सितोऽपि शङ्खो,
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ?॥१८॥

हे मिथ्या-तम-अज्ञान रहित, सु ज्ञानमूर्ति ! हे परम यती॥
हरिहरादि ही मान [1]अर्चना, करते तेरी मन्दमती॥

1—पूजा या उपासना।

है यह निश्चय प्यारे मित्रो, जिनके होत पीलिया रोग ।
श्वेत शंख को विविध वर्ण, विपरीत रूप देखें वे लोग ॥

श्लोकार्थ--हे त्रिलोकाग्रशिखामणे ! जिस तरह पीलिया रोग वाला व्यक्ति सफेद वर्ण वाले भी शंख को पीला और नीला आदि अनेक रंग वाला मानता है इसी प्रकार अन्य मतावलम्बी पुरुष रागद्वेषादि अन्धकार से रहित आपको ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि मान कर पूजते हैं ॥१८॥

तुम भगवन्त विमल गुण लीन । समल रूप मानहिं मतिहीन ॥
ज्यों पीलिया रोग [1]दृग गहै । [2]वर्न विवर्न सख सों कहै ॥

१८ ऋद्धि-ओं ह्रीं अर्हं णमो फणिसत्तिसोसयाणं [3]पण्णसमणाणं

मन्त्र-ओं ह्रीं नमो अरिहंताणं, ओं ह्रीं नमो सिद्धाणं, ओं ह्रीं नमो आयरियाणं, ओं ह्रीं नमो उवज्झायाणं, ओं ह्रीं नमो लोए सव्व-साहूणं, ओं नमो सुअदेवाए, भगवईए सव्वसुअमए, बारसंग-पवयण जणणीए, सरस्सइए, सव्ववाइणि, सुवण्णवणे, ओं अवतर अवतर देवि, मम सरीरं, पविस पुच्छं, तस्स पविस, सव्वजणमयहरीए, अरिहंतसिरीए स्वाहा ।

विधि—इस मन्त्र को पढ़ कर चाक मिट्टी को मन्त्रित कर तिलक लगावे। फिर रात्रि के समय सब मनुष्यों के सोने पर हाथ में जल से भरी झारी लेकर एकान्त स्थान में खड़े खड़े लोगों की वार्ता श्रवण करे। जो बात समझ में आये उसी को सत्य समझे। मन में विचारे हुए कार्य का शुभाशुभ फल इसी तरह ज्ञात होना है।

ओं ह्रीं परवादिदेवस्वरूपध्येयाय नमः।

१-नेत्र । २-अनेकों रंग वाला । ३-प्रज्ञाश्रमण जिनों को नमस्कार हो ।

Oh omnipotent Being ? even the followers of the other (non Jaina) schools of philosophy certainly resort to Thee alone, mistaking Thee for Hari, Hara and others—Thee from whom ignorance has departed. For, Oh God ! is not even a white conch mistaken for one having various colours by those who suffer from Kachakamali (eye-diseases like colour-blindness) ? (18)

नेत्ररोग विनाशक—

धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा—
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि,
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥१९॥

धर्म - [1]देशना के सु-काल में, जो समीपता पा जाता ।
मानव की क्या बात कहूं [2]तरु तक अ-शोक है हो जाता ॥
जीववृन्द नहिं केवल जागत, रवि के प्रकटित ही होते ।
तरु तक सजग होत अति हर्षित, निद्रा तज आलस खोते ॥

श्लोकार्थ—हे पुण्यगुणोत्कीर्ते ! धर्मोपदेश के समय आपकी समीपता के प्रभाव से मनुष्य की तो बात क्या वृक्ष भी अशोक (शोकरहित) हो जाता है। अथवा ठीक ही है

१—उपदेश । २—वृक्ष ।

कि सूर्य का उदय होने पर केवल मनुष्य ही विबोध (जागरण) को प्राप्त नहीं होते किन्तु कमल, पँवार, तोरई आदि वनस्पति भी अपने संकोच रूप निद्रा को छोड़ कर विकसित हो जाती है।

(यह अशोकवृक्ष प्रातिहार्य का वर्णन है)

निकट रहत उपदेश सुनि । तरुवर भये अशोक ॥
ज्यौं रवि ऊँगत जीव सब । प्रगट होत भुविलोक ॥

१६ऋद्धि—ॐ ह्रींअर्हंणमो अक्खिगदरणासयाणं [1]आगासगामीणं।

मंत्र—णहूसाव्वसपलोमोन, णंयाज्भावउमोन, णंआरीय-आमोन, णद्धासिमोन, णताहंरिश्रमोन, हुलुहुलु, कुलुकुलु, चुलुचुलु स्वाहा।

विधि—इस प्रभावशाली महामंत्र को श्रद्धापूर्वक जपने से मत्स्यादिकों की हत्या करने वालों के बन्धन (जाल) में फँसी हुई मछलियां तथा जलचर जीव मुक्त हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं अशोकप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नमः।

Jina's vicinity averts Sorrow.

Leave aside the case of a human being; (for), even a tree becomes free from sorrow (Asoka) on account of its being in Thy proximity at the time Thou preachest religion. Aye, does not the world of living beings including even trees awake at the rise of the sun ? (19)

१—आकाशगामी जिनों को नमस्कार हो।

उच्चाटन कारक—

चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव,
विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !,
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥

है विचित्रता सुर बरसाते, सभी ओर से [1]सघन-सुमन।
नीचे डंठल ऊपर पँखुरी, क्यों होते हैं हे भगवन ॥
है निश्चित, सुजनों सुमनों के, नीचे को होते बन्धन ।
तेरी समीपता की महिमा है, हे वामा—देवी नन्दन ॥

श्लोकार्थ—हे धर्मसाम्राज्यनायक ! देवों के द्वारा आपके ऊपर जो सघन पुष्पों की वृष्टि की जाती है, उनके डंठल नीचे की ओर और पांखुरी ऊपर की ओर रहती हैं, मानो वे डंठल इसी बात को सूचित करते हैं कि आप की निकटता से भव्य-जनों के कर्म-बन्धन नीचे को हो जाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं ॥ २० ॥

(यह पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य का वर्णन है)

सुमनवृष्टि जो सुर करहिं, [2]हेठ बीट मुख सोहिं ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, बन्ध अधोमुख होहिं ॥

२०ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो गहिलगहणासयाणं [3]आसीविसाणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं नमो भगवओ, ॐ (?) पासनाहस्स थंभय सव्वाओ ई ई, ॐ जिणाणाए मा इह, अहि हवंतु, ॐ ह्रां ह्रीं-ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः स्वाहा ।

१—व्यवधानरहित घने अथवा धारा प्रवाहरूप से । २—नीचे ।
३—आशीविष ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो ।

विधि—इस प्रभावक मंत्र से सफेद फूल को १०८ बार मंत्रित कर उसे राज्यप्रमुख को सुँघाने से वह मानवेवाले के वश में होता है और अपराध क्षमा कर देता है।

ॐ ह्रीं पुष्पवृष्टिप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नमः।

Jina's presence is miraculous.

Oh pervader of the universe! it is a matter of surprise that uninterrupted shower of celestial blossoms falls all around with their stalks turned downwards; or why, (it is natural that) in Thy presence, oh master of saints! fetters (stalks) of the good-minded (flowers) (ought to) certainly fall down. (20)

शुष्कवनोपवनविकाशक—

स्थाने गम्भीरहृदयोदधिसम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परमसम्मदसङ्गभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम् ॥२१॥

अति गम्भीर हृदय-सागर से, उपजत प्रभु के दिव्य वचन।
अमृततुल्य मान कर मानव, करते उनका अभिनन्दन॥
पी-पीकर जग-जीव [1]वस्तुतः, पा लेते आनन्द अपार।
अजर अमर हो फिर वे जगकी, हर लेते पीड़ा का भार॥

---

[1]—निश्चयपूर्वक।

श्लोकार्थ—हे त्रिभुवनपते ! आपके अति उदार अगाध हृदयरूपी समुद्र से उत्पन्न हुई दिव्य-वाणी (दिव्यध्वनि) को संसारी जीव सुधासमान बतलाते हैं, सो यह बात सोलह आना सच है क्योंकि धर्मानुरागी भव्यजन आपकी उस अमृततुल्यवाणी का पान करके निराकुल अक्षय अनंतसुख को प्राप्त करते हुए अजर अमर पद को प्राप्त करते हैं ॥२१॥

(यह दिव्यध्वनि प्रातिहार्य का वर्णन है)

उपजी तुम हिय उदधितें, वानी सुधा समान ।
जिहिं पीवत भविजन लहहिं, अजर अमर पद थान ॥

२१ ऋद्धि ॐ ह्रीं र्हीं अर्हं णमो पुप्फियतरुवत्तयराणं दिट्ठिविसाणं[1] ।

मंत्र—ॐ अरिहंतसिद्धआयरियउवज्झायसव्वसाहू (णं ?) सव्वधम्मतित्थयराणं. ॐ नमो भगवइए सुअदेवयाए शान्तिदेवयाए सव्वपवयणदिवयाणं, दसण्हं दिसापालाणं चउण्हं लोगपालाणं, ॐ ह्रीं अरिहंतदेवाणं नमः ।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र को १०८ बार जपने से सब कार्यों की सिद्धि होती है, जय-जय होती है और हिंसक जानवर सर्प चौरादिकों का भय दूर होता है ।

ॐ ह्रीं अजरामरदिव्यध्वनिप्रातिहार्योप-शोभिताय (श्री ?) जिनाय नमः ।

Jina's sermon leads to immortality.

It is proper that Thy speech which springs up from the ocean of Thy grave

---

१—दृष्टि विषऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो ।

heart is spoken of as ambrosia; for, by drinking it, the Bhavyas who (hence) participate in the supreme joy, quickly attain the status of permanent youth and immortality. (21)

मधुरफलप्रदायक—

स्वामिन् सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥२२॥

ढुरते चारु-चँवर [1]अमरों से, नीचे से ऊपर जाते।
भव्यजनों को विविधरूप से, विनय सफल वे दर्शाते ॥
शुद्धभाव से [2]नतशिर हो जो, तब [3]पदाब्ज में झुक जाते।
परमशुद्ध हो ऊर्ध्वगती को, निश्चय करि भविजन पाते ॥

श्लोकार्थ—हे समवशरणलक्ष्मीसुशोभितदेव ! जब देवगण आपके ऊपर चँवर ढोरते हैं तब वे पहिले नीचे की ओर झुकते हैं और बाद में ऊपर की ओर जाते हैं मानो वे जनता को यह ही सूचित करते हैं कि जिनेन्द्रदेव को झुक झुक कर नमस्कार करने वाले व्यक्ति हमारे समान ही ऊपर को जाते हैं अर्थात् स्वर्ग या मोक्षपाते हैं ॥२२॥

(यह चँवर प्रातिहार्य का वर्णन है)

कहहिं सार तिहुँलोक को, ये सुरचामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमें, तसु गति ऊरध होय ॥

१—देवों द्वारा २—मस्तक झुका कर ३—चरणकमल

२३ ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो तरु-पत्तपणासयाणं [1]उग्ग-तवाणं।

मंत्र—ओं हत्थुमले विणुमुहुमल (ले ?) ॐ मलिय ॐ सतुहुमाणु सीसधुणताजेगया, आयापायालगंत ॐ अलिंजरेस सव्वंजरे स्वाहा।

विधि—इस मंत्र को ७ बार जपते हुए मुख के सामने अपनी दोनों हथेलियों को मसल कर अच्छे आदमी के पास मिलने को जाने से लाभ होता है तथा राजा की ओर से सम्मान मिलता है।

ओं ह्रीं चामरप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नमः।

The poet describes the fourth Pratiharya

Oh Lord ! I think, the clusters of the sacred (or bright) celestial chowries (Chamaras) which first bend very low and then rise up proclaim that those pure-hearted persons who bow to (Thee) this master of the sages are sure to reach the highest grade. (22)

राज्यसन्मानदायक—

श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चै-
श्चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥

१—उग्रतप वाले जिनों को नमस्कार हो।

उज्ज्वल हेम सुरल-[1]पीठ पर, श्याम सु-तन शोभित [2]अनुरूप।
अतिगम्भीर सु-[3]नि.सृत वाणी, बतलाती है सत्य स्वरूप॥
ज्यों सुमेरु पर ऊँचे स्वर से, गरज गरज घन बरसै घोर।
उसे देखने सुनने को जन, उत्सुक होते जैसे मोर॥

श्लोकार्थ—हे भगवन! स्वर्णनिर्मित और रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान और दिव्यध्वनि को प्रकट करता हुआ आपका सांवला शरीर ऐसा जान पड़ता है जैसे स्वर्णमय सुमेरुपर्वत पर वर्षाकालीन नवीन काले मेघ गर्जना कर रहे हो। उन मेघों को जैसे मयूर बड़ी उत्सुकता से देखते हैं उसी प्रकार भव्य जीव आपको भी बड़ी उत्सुकता से देखते हैं॥ २३॥

(यह सिंहासन प्रातिहार्य का वर्णन है)

सिंहासन गिरि मेरु सम, प्रभु धुनि गरजत घोर।
श्याम सुतन घनरूप लखि, नाचत भविजन-मोर॥

२३ ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो वज्मय (बंधण) हरणाणं [5]दित्ततवाण।

मंत्र—ॐ नमो भगवति! चण्डि! कात्यायनि! सुभग-दुर्भगयुवतिजनानां (मा) कर्पय आकर्षय ह्रीं र र र्‍यूं संवौषट् [6] देवदत्ताया हृदयं घे घे।

विधि—इस मंत्र को ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने से इच्छित स्त्री का आकर्षण होता है।

ॐ ह्रीं सिंहासनप्रातिहार्योपशोभिताय श्री जिनाय नमः।

१—सिंहासन। २—अपूर्व। ३—अच्छी तरह निकलने वाली। ४—मेघ। ५—दीप्ततप वाले जिनों को नमस्कार हो। ६—उस स्त्री का नाम लेना चाहिये जिसका आकर्षण करना है।

The poet describes the fifth Pratiharya.

The Bhavyas here ardently look at Thee who art dark (in complexion), whose speech is grave and who art seated on a glittering golden lion-throne studded with jewels, as is the case with the peacocks who eagerly look at the mightily thundering, dark and fresh cloud which has arisen to the summit of the golden mountain (Meru) (23)

शत्रुविजितराज्यप्रदायक—

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव ।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग !
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ? ॥२४॥

तुव तन भा[1]-मण्डल से होते, सुरतरु के पल्लव[2] छवि-छीन।
प्रभुप्रभाव को प्रकट दिखाते, हो जड़रूप चेतना-हीन॥
जब जिनवर की समीपतातैं, सुरतरु होजाता गत[3]-राग।
तब न मनुज क्यों होवेगा जप, वीतराग खो करके राग ?॥

भावार्थ—हे वीतरागदेव ! जब कि आपके देदीप्यमान भामण्डल की प्रभा से अशोक वृक्ष के पत्तों की लालिमा भी लुप्त हो जाती है, अर्थात् आपकी समीपता से जब वृक्षों का

१— गोलाकार कान्तिपुंज। २—पत्र। ३—लालिमा रहित।

राग (लालिमा) भी जाता रहता है तब ऐसा कौन सचेतन पुरुष है जो आपके ध्यान द्वारा या आपकी समीपता से वीत-रागता को प्राप्त न होगा ? ॥२४॥

(यह भामण्डल प्रातिहार्य का वर्णन है)

छवि हत होंहिं अशोकदल, तुव भामण्डल देख ।
वीतराग के निकट रह, रहत न राग विसेख ॥

२४ ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो रज्जदावयाणं [1]तत्तनवाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं भैरवरूपधारिणि ! चण्डशूलिनि ! प्रतिपक्ष-सैन्यं चूर्णय चूर्णय घूर्म्मय घूर्म्मय भेदय भेदय ग्रस ग्रस पच पच खादय खादय मारय मारय हुँ फट् स्वाहा ।

(—श्री भैरव प० क० अ० ५ श्लो० २७)

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र को १०८ बार जप कर चारों ओर लकीर फेरने से दुश्मन की सेना मैदान छोड़ कर भाग जाती है । साधक की जय होती है और हिम्मत बढ़ती है ।

ॐ ह्रीं भामण्डलप्रातिहार्यप्रभास्वते (श्री) जिनाय नमः ।

Even God's presence destroys passions.

The colour of leaves of the Asoka tree is obscured by the dark halo of the orb of Thy light (Bhamandala) which is spreading above. Or why, oh passionless one ! which animate being is not set free from attachment (and aversion) by the influence of Thy mere presence ? (24)

१—तप्ततप वाले जिनों को नमस्कार हो ।

असाध्यरोग शामक —

भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन—
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥

नभ-मंडल में गूँज गूँज कर, सुरदुन्दुभि[1] कर रही निनाद[2] ।
रे रे प्राणी आतम हित नित, भज ले प्रभु को तज परमाद ॥
मुक्ति धाम पहुँचाने में जो, सार्थवाह[3] बन तेरा साथ ।
देंगे त्रिभुवनपति परमेश्वर, विघ्नविनाशक पारसनाथ ॥

भावार्थ—हे मुक्तिसार्थवाहक ! आकाश में जो देवों के द्वारा नगाड़ा बज रहा है वह मानो चिल्ला-चिल्लाकर तीनों लोकों के जीवों को सचेत ही कर रहा है, कि जो मोक्ष नगरी की यात्रा को जाना चाहते हैं वे प्रमाद छोड़ कर भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा करें ॥ २५ ॥

(यह दुन्दुभिप्रातिहार्य का वर्णन है)

सीख कहै तिहुँ लोक को, यह सुर दुन्दुभि नाद ।
शिवपथ सारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥

२५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो हिंडमलणाणं महा· तवाणं[4] ।

१—दुन्दुभि नाम का देवताओं का बाजा । २—शब्द । ३—सारथी सहायक या अग्रसर । ४—महातप धारी जिनों को नमस्कार हो ।

मंत्र—ॐ नमो भगवति ! वृद्धगरुडाय सर्वविषविनाशिनि ! छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द, गृण्ह गृण्ह, एहि एहि भगवति ! विद्ये हर हर हुं फट् स्वाहा ।

—(श्री भैरवपद्मावतीकल्प अ० १० श्लो० १६)

विधि—इस मंत्र का शुद्ध पाठ करते हुए जहर चढ़े आदमी के नजदीक जोर जोर से ढोल बजाने से जहर उतर जाता है ।

ॐ ह्रीं दुन्दुभिप्रातिहार्याय श्रीजिनाय नमः ।

The seventh Pratiharya viz., the celestial drum like the previous objects is suggestive.

Oh God ! I believe that the celestial drum which is resounding in the sky announces to the three worlds :—Haloo, Haloo, shake off idleness, approach (this God) and resort to Him-the leader of the caravan leading to (proceeding towards) the city of the final emancipation. (25)

वचनसिद्धिप्रतिष्ठापक—

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ !,
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः[1] ।

१—विहिताधिकारः इत्यपिपाठः ।

मुक्ताकलापकलितो[1] ल्लसितातपत्र—
व्याजात्त्रिधा धृततनु र्ध्रुवमभ्युपेतः ॥२६॥

अखिल-विश्व में हे प्रभु ! तुमने, फैलाया है विमल-प्रकाश ।
अतः छोड़ कर स्वाधिकार को, ज्योतिर्गण आया तव पास ॥
मणि-मुक्ताओं की झालर युत, आतपत्र[2] का मिष लेकर ।
त्रिविध-रूप धर प्रभु को सेवें, निशिपति तारान्वित[3] होकर ॥

श्लोकार्थ—हे अपूर्वतेजपुञ्ज ! आपने तीनों लोकों को प्रकाशित कर दिया, अब चन्द्रमा किसे प्रकाशित करे ? इसीलिए वह तीन छत्र का वेष धारण कर अपना अधिकार वापिस लेने की इच्छा से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ है। छत्रों में जो मोती लगे हैं वे मानों चन्द्रमा के परिवार स्वरूप तारागण ही हैं ॥ २६ ॥

(यह छत्रत्रय प्रातिहार्य का वर्णन है)

तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागन छवि देत ।
त्रिविध रूप धरि मनहुँ ससि, सेवत नखत समेत ॥

२६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जयपद्दाईणं [4]घोरतवाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं प्रत्यङ्गिरे महाविद्ये येन-येन केनचित् मम पापं कृतं कारितम् अनुमतं वा तत् पापं तस्यैव गच्छतु ॐ ह्रीं श्रीं प्रत्यङ्गिरे महाविद्ये स्वाहा ।

विधि—प्रातःकाल एकान्त स्थान में पूर्व दिशा की ओर मुख करके तथा सन्ध्या समय पश्चिम की ओर मुख करके

१—कलितोच्छ्वसितात इत्यपि पाठः । २—छत्र । ३—नक्षत्रों सहित । ४—घोरतपधारी जिनों को नमस्कार हो ।

दोनों हाथ जोड़कर अञ्जलिमुद्रा में १०८ बार मंत्र का जाप करने से दूसरों की विद्या का छेद होता है।

ॐ ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यविराजिताय श्रीजिनाय नमः।

The poet delineates the eighth or the final Pratiharya.

Oh Lord! as the worlds have been (already) illuminated by Thee, this moon accompanied by stars, (being thus) deprived of her authority has certainly approached Thee by assuming the three bodies in the disguise of the (three) canopies which are shining on account of their being adorned by a cluster of pearls. (26)

वैरविरोधविनाशक—

स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन,
कान्ति-प्रताप-यशसामिव सञ्चयेन।
माणिक्य-हेम-रजतप्रविनिर्मितेन,
[1]सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥

हेम-[2]रजत-माणिक से निर्मित, कोट तीन अति शोभित से।
तीन लोक एकत्रित होके, किये प्रभु को वेष्ठित से॥
अथवा कान्ति-प्रताप-सुयश के, संचित हुये [3]सुकृत से ढेर।
मानो चारों दिशि से आके, लिया इन्होंने प्रभु को घेर॥

१—शाल० इत्यपि पाठः। २—चांदी। ३—पुण्य।

श्लोकार्थ—हे प्रतापपुञ्ज ! समवसरण भूमि में आपके चारों ओर माणिक्य, स्वर्ण और चांदी के बने तीन कोट हैं, वे मानो आपकी कान्ति, प्रताप और कीर्ति के वर्तुलाकार समूह ही हैं ॥ २७ ॥

प्रभु तुम शरीर दुति रजत जेम, परताप पुंज जिमि शुद्ध हेम।
अति धवल सुजश [१]रूपा समान, तिनके गढ़ तीन विराजमान ॥

२७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खलदुट्ठणासयाणं [२]घोरपरक्कमाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं, ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं, ॐ ह्रीं नमो आइरियाणं, ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं, ॐ ह्रीं नमो लोए सव्वसाहूण, ॐ ह्रीं नमो णाणाय, ॐ ह्रीं नमो दंसणाय, ॐ ह्रीं नमो चारित्ताय, ॐ ह्रीं नमो तवाय, ॐ ह्रीं नमो त्रैलोक्यवशंकराय ह्रीं स्वाहा।

विधि—इस महामंत्र का श्रद्धापूर्वक उच्चारण करते हुए जल मंत्रित कर रोगी को पिलाने तथा उस पर छींटा देने से उसकी पीड़ा एवं दृष्टि-दोष (नजर) दूर होती है।

ॐ ह्रीं वप्रत्रयविराजिताय श्रीजिनाय नमः।

The poet depicts the triad of ramparts.

Oh (all) knowing being ! Thou shinest in all directions on account of the triad of the ramparts beautifully made of rubies, gold and silver—the triad which is as it were the store of Thy lustre, prowess and glory, that

१—चांदी। २—घोरपराक्रम वाले जिनों को नमस्कार हो।

fill up the three worlds and are amassed together. (27)

यशःकीर्तिप्रसारक—

दिव्यस्रजो जिन ! नमत्त्रिदशाधिपाना—
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र[1],
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

झुके हुये इन्द्रों के मुकुटों, को तजि कर सुमनों[2] के हार।
रह जाते जिन चरणों में ही, मानो समझ श्रेष्ठ आधार ॥
प्रभु का छोड़ समागम सुन्दर, सु-मनस[3] कहीं न जाते हैं।
तव प्रभाव से वे त्रिभुवनपति !, भव-समुद्र तिर जाते हैं ॥

श्लोकार्थ—हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार करते समय इन्द्रों के मुकुटों में लगी हुई दिव्य पुष्पमालायें आपके श्रीचरणों में गिर जाती हैं मानो वे पुष्पमालायें आपसे इतना प्रेम करती हैं कि उसके पीछे इन्द्रों के रत्ननिर्मित मुकुटों को भी वे छोड़ देती हैं। अर्थात् आपके लिये बड़े बड़े इन्द्र भी नमस्कार करते हैं।

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमित भाल। तिन सीस मुकुट तज देहिं माल ॥
तुव चरन लगत लहलहै प्रीति। नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥

२८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उवद्दवजणाणं घोर-गुणाणं[4]।

१—वाऽपरत्र इत्यपि संभवति। २—फूलों। ३—विद्वान।
४—घोरगुण वाले जिनों को नमस्कार हो।

मंत्र—ॐ ह्रीं अरिहन्त सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहू चुलु चुलु हुलु हुलु कुलु कुलु मुलु मुलु इच्छियं मे कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—इस प्रभावक मंत्र का श्रद्धापूर्वक एक लाख बार जप पूरा करने से तीनों लोकों में जय प्राप्त होती है, प्रताप बढ़ता है, पराधीनता नाश होती है तथा मनोरथ पूर्ण होते हैं।

ॐ ह्रीं पुष्पमालानिषेवितचरणाम्बुजाय अर्हते नमः।

The poet praises God by resorting to a rhetorical inconsistency.

Oh Jina! celestial garlands of the bowing lords of heavens leave aside their diadems, (even) though (they are) studded with jewels and resort to Thy feet. Or indeed the good-minded (flowers) do not find pleasure anywhere else when there is Thy company. (28)

आकर्षणकारक—

त्वं नाथ! जन्मजलधे र्विपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्[1]।
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः॥२९॥

१—पृष्ठिलग्नान् इत्यपि पाठः।

भव-सागर से तुम परान्मुख[1], भक्तों को तारो कैसे ? ।
यदि तारो तो कर्म-पाक के, रस से शून्य अहो कैसे ? ॥
अधोमुखी[2] परिपक्व कलश ज्यों, स्वयं पीठ पर रख करके ।
ले जाता है पार सिन्धु के, तिरकर और तिरा करके ॥

श्लोकार्थ—हे कृपालु देव ! जिस तरह जल में अधोमुख (उलटा) पका घड़ा अपनी पीठ पर आरूढ़ मनुष्यों को जलाशय से पार कर देता है, उसी तरह भव-समुद्र से परान्मुख हुए आप अपने अनुयायी भव्यजनों को तार देते हो सो यह उचित ही है। परन्तु घड़ा तो जलाशय से वही पार कर सकता है जो विपाकसहित (पकाया हुआ) है; परन्तु आप तो विपाक (कर्मफलानुभव) रहित होकर तारते हैं। यह आपकी अचिन्त्य महिमा है ॥ २९ ॥

प्रभु भोग विमुख तन कर्म दाह । जन पार करत भव-जल निवाह ॥
ज्यौं माटी कलश सुपक्व होय । लै भार अधोमुख तिरहि तोय ॥

२९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो देवाणुप्पियाणं घोरगुण[3] बंभचारीणं ।

मंत्र—ॐ तेजोर्हं सोम सुधा हंस स्वाहा। ॐ अर्हं ह्रीं क्ष्वीं स्वाहा ।

विधि—भोजपत्र पर इस मंत्र को लिखे और मोमबत्ती पर लपेटे फिर मिट्टी के कोरे घड़े में पानी भर कर उसमें उसे डालने से दाहज्वर नाश होता है।

ॐ ह्रीं संसारसागरतारकाय श्रीजिनाय नमः ।

१—विमुख । २—औंधा अर्थात् मुँह नीचे की ओर तथा पीठ ऊपर की ओर। ३—घोर ब्रह्मचर्यधारी जिनों को नमस्कार हो।

Even one who indirectly follows Jina i. e. directly follows Jainism gets liberated.

Oh Lord ! though Thou hast turned away Thy face from the ocean of births (and deaths), yet Thou enablest the living beings clinging to Thy back to cross it Nevertheless, this is justifiable in the case of Thine that art the good governor of the world (Parthiva-nipa). This is also seen in the case of an earthen pot (Parthiva-nipa). But, this is strange that Thou art not subject to the effects of Karmans (Karma-vipaka-sunya) whereas that earthen pot is not so. (There is another interpretation possible, viz., it is strange that Thou enablest the beings to cross Samsara even when Thou art Karma-vipaka sunya, but such is not the case with an earthen pot which is not annealed. (29)

असंभवकार्यसाधक—

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक ! दुर्गतस्त्वं,
किं वाऽक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ! ।

अज्ञानवत्यपि सदैव कथश्चिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतुः[1] ॥३०॥

जगनायक जगपालक होकर, तुम कहलाते दुर्गत[2] क्यों ? ।
यद्यपि अक्षर[3] मय स्वभाव है, तो फिर अलिखित[4] अक्षत क्यों?॥
ज्ञान झलकता सदा आप में, फिर क्यों कहलाते अनजान[5] ।
स्व-पर प्रकाशक अज्ञ जनों को, हे प्रभु ! तुम ही सूर्य समान ॥

श्लोकार्थ—हे जगपालक ! आप तीन लोक के स्वामी होकर भी निर्धन हैं। अक्षरस्वभाव होकर भी लेखनक्रिया रहित हैं; इसी प्रकार से अज्ञानी होकर भी त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती पदार्थों के जानने वाले ज्ञान से विभूषित हैं।

जिस अलंकार में शब्द से विरोध प्रतीत होने पर भी वस्तुतः विरोध नहीं होता उसे विरोधाभास अलंकार कहते हैं। इस श्लोक में इसी अलंकार का आश्रय लेकर वर्णन किया गया है। उपर्युक्त अर्थ में दिखने वाले विरोध का परिहार इस प्रकार है—

हे भगवन् ! आप त्रिलोकीनाथ हैं और कठिनाई से जाने जा सकते हैं। अविनश्वर स्वभाव वाले होकर भी आकार रहित (निराकार) हैं। अज्ञानी मनुष्यों की रक्षा करने वाले आप में सदा केवलज्ञान प्रकाशित रहता है।

तुम महाराज निर्धन निरास । तज विभव विभव सब जग विकास ॥
अक्षर स्वभाव सै लखै न कोय । महिमा अनन्त भगवन्त सोय ॥

१—काशहेतुः इत्यपि पाठः। २—दरिद्र, अत्यन्त कठिनाई से जानने योग्य। ३—अक्षरस्वभाव होकर भी मोक्षस्वरूप। ४—लिपि से लिखे नहीं जा सकते, कर्मलेपरहित। ५—अज्ञानी होकर भी छद्मस्थ अज्ञानियों को संबोधन करने वाले।

३० ऋद्धि— ॐ ह्रीं अर्हं णमो अगुरुवबलपदाईणं आमोसहिपत्ताणं[1] ।

मंत्र—ॐ ह्रीं अर्हं नमो जिणाणं, लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोअगराणं, मम शुभाशुभं दर्शय दर्शय ॐ ह्रीं कर्णपिशाचिनी मुण्डे स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र को शयन करते वक्त १०८ बार जपने से स्वप्न में किये हुए कार्य का संभावित शुभाशुभ फल मालूम पड़ता है।

ॐ ह्रीं अद्‌भुतगुणविराजितरूपाय श्रीजिनाय नमः।

Oh Saviour of mankind (Janapalaka) ! though Thou art the master of the universe, yet Thou art poor (Durgata) Oh God ! although Thy very nature is a letter (Akshara), yet Thou art not forming an alphabet (Thou art Alipi). Moreover, how is it that knowledge the acause of the illumination of the universe permanently shines in Thee, even when Thou art ignorant (Ajnanavati) ?

These apparent contradictions can by removed be rendering the verse as follows :—

१—आमर्ष-औषधि प्राप्त जिनों को नमस्कार हो।

Oh Saviour of mankind ! as Thou art the master of the universe, Thou art realized with great difficulty (Durgata). Or, Oh Saviour of mankind !(Janapa) ! though Thou art the master of the universe, Thou art bald-headed (Alaka-durgata). Or Though are the protector from the mundane existence (Durga) as Thy very nature is imperishable (Akshara), Thou art not enshrouded with Karmans (Alipi) And there is no wonder if kn wledge, the cause of the illumination of the universe, always shines in Thee, even when Thou redeemest the ignorant (Ajnan avati) (30)

शुभाशुभ प्रश्न दर्शक—

प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषा—
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥

पूरव वैर विचार क्रोध करि कमठ धूलि बहु बरसाई ।
कर न सका प्रभु तव तन मैला, हुआ मलिन खुद दुखदाई ॥
कर करके उपसर्ग घनेरे, थकि कर फिर वह हार गया ।
कर्मबन्ध कर दुए प्रपंची, मुँह की खाकर भाग गया ॥

श्लोकार्थ—हे जितशत्रो ! आपके पूर्वभव के वैरी 'कमठ' ने आप पर भारी धूल उड़ा कर उपसर्ग किया परन्तु वह धूलि आपके शरीर की छाया भी नष्ट नहीं कर सकी, प्रत्युत तिरस्कार की दृष्टि से किया गया उसका यह कार्य तो दूर रहे किन्तु विफल मनोरथ हताश वह दुष्ट कमठ का जीव ही रज-कर्णों (पापकर्मों) से कस कर जकड़ा गया ॥ ३१ ॥

कोप्यौ सु कमठ निज वैर देख । तिन करी धूल वर्षा विसेख ॥
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन । सो भयो पापि लम्पट मलीन ॥

३१ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो इट्ठविरणत्तिदावयाणं खेलोसहिपत्ताणं[1] ।

मंत्र—ॐ ह्रीं पार्श्वयक्षदिव्यरूपाय महा (घ ?) वर्ण एहि एहि आँ क्रों ह्रीं नमः ।

—(भै० प० क० अ० ३ श्लो० ३८)

विधि—इस मंत्र को श्रद्धापूर्वक जपने से दुष्ट दुश्मनों का पराजय होता है तथा उपद्रव शान्त होते हैं ।

ॐ ह्रीं रजोवृष्टयक्षोभ्याय श्रीजिनाय नमः ।

Those who try to harass God are caught in their own trap.

Masses of dust which entirely filled up the sky and which were thrown up in rage by malevolent Kamatha failed to mar, oh Lord, even Thy loveliness. On the contrary, that very wretch whose hopes were shattered, was caught in this trap (of masses of dust). (31)

१—खेलौषधि ऋद्धि प्राप्त जिनों को नमस्कार हो ।

दुष्टताप्रतिरोधी—

यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमं,
भ्रश्यत्तडिन्मुस[1]ल मांसलघोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥

उमड़ घुमड कर गर्जत बहुविध, तड़कत बिजली भयकारी ।
बरसा अति घनघोर दैत्य ने, प्रभु के सिर पर कर डारी ॥
प्रभु का कछु न बिगाड़ सकी वह, मूसल सी मोटी धारा ।
स्वयं कमठ ने हठधर्मी वश, निग्रह अपना कर डारा ॥

श्लोकार्थ—हे महाबल ! आप पर मूसलधार पानी वर्षा कर कमठ ने जो महान उपसर्ग किया था उससे आपका क्या बिगड़ा ? परन्तु उसी ने स्वयं अपने लिये तलवार का घाव कर लिया । अर्थात् ऐसा खोटा कृत्य करने के कारण स्वयं उसने घोर पाप कर्मों का बन्ध कर लिया ॥ ३२ ॥

गरजन्त घोर घन अन्धकार । चमकत विज्जु जल मुसल धार ॥
वरषत कमठ धर ध्यान रुद्र । दुस्तर करंत निज भवसमुद्र ॥

३२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठमदणासयाणं जल्लोसहिपत्ताणं[2] ।

मंत्र—ॐ भ्रम भ्रम केशि भ्रम केशि भ्रम माते भ्रम माते भ्रम विभ्रम विभ्रम मुह्य मुह्य मोहय मोहय स्वाहा ।

१—शकारोऽपि क्वचित् । २—जल्लौषधि ऋद्धि प्राप्त जिनों को नमस्कार हो ।

विधि—इस मंत्र को जपते हुए जमीन पर न गिरे हुए सरसों के दाने मंत्रित कर घर की चौखट पर डालने से उस घर के लोग गहरी निद्रा में निमग्न हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं कमठदैत्यमुक्तवारिधाराक्षोभ्याय श्रीजिनाय नमः।

Oh Jina! that very shower which was let loose (upon Thee) by the demon (Kamatha)—the shower which was unfordable and excessively horrible and which was accompanied by a range of thundering mighty clouds, flashes of lightnings horribly emanating (from the sky) and terrible drops of water thick like a club served in his own (Kamatha's) case the purpose of a bad sword. (32)

उल्कापातातिवृष्ट्यनावृष्टिनिरोधक—

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृति-मर्त्यमुण्ड—
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥३३॥

कालरूप विकराल [1]वक्ष विच, मृतमुंडन की धरि माला ।
अधिक भयावह जिनके मुख से, निकल रही अग्नीज्वाला ॥

१—छाती।

अगणित प्रेत पिशाच असुर ने, तुम पर स्वामिन भेज दिये।
भव भव के दुखहेतु क्रूर ने, कर्म अनेकों बांध लिये॥

श्लोकार्थ—हे उपसर्गविजयिन ! कमठ के जीव ने आपको कठोर तपस्या से चलायमान करने की खोटी नियत से जो विकराल पिशाचों का समूह आप की तरफ उपद्रव करने के लिये दौड़ाया था, उसमे आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं हुआ परन्तु उस क्रूर कमठ के ही अनेक खोटे कर्मों का बंध हुआ, जिससे उसे भव भव में असह्य यातनाएं झेलनी पड़ीं ॥३३॥

वस्तुछन्द—*मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि।*
भेजे तुरत पिशाचगन, नाथ पास उपसर्ग कारन।
अग्निजाल झलकंत मुख धुनि, करत जिमि[1] मत्तवारण॥
कालरूप विकराल तन, मुण्डमाल तिह कंठ।
ह्वै निसंक वह रंक निज, करे कर्मदृढ गंठ॥

३३ ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो असंणिपातादिचारयाणं [2]सव्वोसहिपत्ताणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं म्रां म्रीं म्रूँ म्रः क्लीं क्लीं कलिकुण्ड पासनाह ॐ चुरु चुरु मुरु मुरु फुरु फुरु फर फर (फार फार) किलि किलि कल कल धम धम ध्यानाग्निना भस्मीकुरु कुरु पुण्य पुण्य प्रणतानां हित कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा।

विधि—इस मंत्र का श्रद्धापूर्वक स्मरण करने से राज्य भय, भूतभय, पिशाचभय, डाकिनी शाकिनी हस्ती सिंह सर्प बिच्छू आदि का भय नष्ट होता है।

ॐ ह्रीं कमठदैत्यप्रेषितभूतपिशाचाद्युत्तोभ्याय श्रीजिनाय नमः।

१—मदोन्मत्त हाथी। २—सर्वौषधि ऋद्धि प्राप्त जिनों को नमस्कार हो।

Even that very troop of the ghosts that was sent against Thee by him (Kamatha)—the gho-ts who were (round their necks› garlands (reaching their chests) of skulls of human beings, with dishevelled and erect hair and distorted features, and who were belching fire from their dreadful mouths became the cause of mundane sufferings in every birth in his (Kamathas) case. (33)

भूतपिशाचपीड़ा तथा शत्रुभय नाशक—

धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्या : ।
भक्त्योल्ल--सत्पुलकपक्ष्मल--देह-देशाः,
पादद्वयं तव विभो ! भुवि जन्मभाजः ॥३४॥

पुलकित वदन सु-मन हर्षित हो, जो जन तज माया जंजाल ।
त्रिभुवनपति के चरण-कमल की, सेवा करते तीनो काल ॥
तुव प्रसादतैं भविजन सारे, लग जाते भवसागर पार ।
मानवजीवन सफल बनाते, धन्य धन्य उनका अवतार ॥

श्लोकार्थ—हे त्रिलोकीनाथ ! जो प्राणी भक्ति से उत्पन्न रोमाञ्चों से पुलकित होकर सांसारिक अन्य कार्यों को छोड़कर तीनों सन्ध्याओं में विधिपूर्वक आपके चरणों की आराधना करते हैं संसार में वे ही धन्य हैं ॥३४॥

जे तुव चरन कमल तिहुंकाल । सेवहि तजि माया जंजाल ॥
भाव-भगति मन हरष अपार । धन्य धन्य जग तिन अवतार ॥

३४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो भूतवाहावहारयाणं [1] विट्ठोसहिपत्ताणं ;

मंत्र—ॐ नमो अरिहंताणं ॐ नमो भगवइ महाविज्जाए सत्तट्ठाए मोर हुलु हुलु चुलु चुलु मयूरवाहिनीए स्वाहा ।

विधि—पौष कृष्णा १० (गुजराती मगसिर कृष्णा १०वीं) के दिन निराहार रह कर इस मंत्र का श्रद्धापूर्वक १००८ वार जप करे । परदेशगमन, व्यापार तथा लेन-देन के समय उक्त मन्त्र का ७ वार स्मरण करने से लक्ष्मी और अनाज का लाभ होता है ।

ॐ ह्रीं त्रिकालपूजनीयाय श्रीजिनाय नमः ।

Those who devote their time in worshipping God are fortunate.

Oh Lord of the universe! blessed are those persons alone who, by leaving aside their other activities worship here the pair of Thy feet, oh mighty one, thrice a day (dawn, noon and sunset) according to the prescribed rules, with the different parts of their bodies covered up with bristling horripliation of devotion. (34)

१—जिनका मल औषधि रूप परिणत हो गया है, उन जिनों को नमस्कार हो ।

मृगी उन्माद अपस्मार विनाशक—

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र—मन्त्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ? ॥३५॥

इस असीम भव-सागर में नित, भ्रमत अकथ दुख पायो।
सोऊ सु-यश तुम्हारो साँचो, नहिं कानों सुन पायो॥
प्रभु का नाम-मन्त्र यदि सुनता, चित्त लगा करके भरपूर।
तो यह विपदारूपी नागिन, पास न आती रहती दूर॥

श्लोकार्थ—हे सङ्कटमोचन ! इस अपार संसार-सागर में मैंने आपका नाम नहीं सुना अर्थात् आपकी उत्तम कीर्ति मेरे कानों द्वारा नहीं सुनी गई; क्योंकि निश्चय से यदि आपका नामरूपी पवित्र मन्त्र मैंने सुना होता तो क्या विपत्तिरूपी नागिन मेरे समीप आती ? अर्थात् कभी न आती ॥३५॥

भवसागर महँ फिरत अजान । मैं तुव सुजस सुन्यौ नहिं कान॥
जो प्रभुनाम मंत्र मन धरै । तासौं विपति भुजंगम डरै॥

३५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो मिगीरोअवारयाणं [1]मणबलीणं।

मंत्र—ॐ नमो अरिहंताणं ज्म्ल्व्र्यूं नमः, ॐ नमो सिद्धाणं भ्म्ल्व्र्यूं नमः, ॐ नमो आयरियाणं स्म्ल्व्र्यूं नमः, ॐ नमो उवज्झायाणं ह्ल्व्र्यूं नमः, ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं छ्म्ल्व्र्यूं नमः, देवदत्तस्य (अमुकस्य) संकटमोचनं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—सुन्दर चौकी पर इस मंत्र को लिख कर श्री

१—मनोबलधारी जिनों को नमस्कार हो।

पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा को पधरावे, पश्चात् चमेली के फूलों को चौकी पर चढ़ाते हुए ५०० बार मन्त्र का जाप करे। यह जप खड़े रह कर करना चाहिये। इससे सर्व संकटों का नाश होता है और सर्वत्र जय जयकार होती है।

ओं ह्रीं आपन्निवारकाय श्रीजिनाय नमः।

The poet commences self-examination and resorts to repentance.

Oh Lord of the saints! I do not believe that Thou hast (Thy name has) ever come within the range of my ears, in this endless ocean of existence; otherwise, can the venemous reptile of disasters approach (me), after the pure incantation (in the form) of Thy appellation has been listened to (by me)? (35)

सर्पवशीकरण—

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव!
मन्ये मया महित-मीहित-दान-दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां,
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥३६॥

पूरव भव में तव चरनन की, मनवांछित फल की दातार।
की न कभी सेवा भावों से, मुझ को हुआ आज निरधार॥
अतः रंक जन मेरा करते, हास्यसहित अपमान अपार।
सेवक अपना मुझे बनालो, अब तो हे प्रभु जगदाधार॥

श्लोकार्थ—हे वरद ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले के अनेक जन्मों में मैंने मनोवांछित फलों के देने में पूर्ण समर्थ आपके पवित्र चरणों की पूजा नहीं की, इसीसे इस जन्म में मैं मर्मभेदी तिरस्कारों का आगार (घर) बना हुआ हूँ ॥३६॥

मनवांछित फल जिनपद माहि । मैं पूरव भव पूजे नाहि ॥
माया मगन फिर्यो अग्यान । करहि रंकजन मुझ अपमान ॥

३६ ऋद्धि--ॐ ह्रीं अर्हं णमो वाचवलीयणकुसलाणं [1]वचवावलीणं

मंत्र—ॐ नमो भगवते चन्द्रप्रभाय चन्द्रेन्द्रमहिताय नयनमनोहराय ॐ चुलु चुलु गुलु गुलु नीलभ्रमरि नीलभ्रमरि मनोहरि सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

(—श्री भै० प० क० अ० ६ श्लोक १८)

विधि—दीपमालिका के दिन पीली गाय के शुद्ध घृत का दीपक जलाकर नये मिट्टी के वर्तन में काजल बनावे । पश्चात् कार्य पड़ने पर काजल आंख में लगाने से सब आदमी वश में होते हैं ।

ॐ ह्रीं सर्वपराभवहरणाय श्रीजिनाय नमः ।

A worshipper of God can never suffer from humiliations and disappointments.

Oh God ! I believe that Thy (pair of) feet capable of granting desired gifts has not been worshipped by me even in the previous births. That is why I have

---

१—वचनबली जिनों को नमस्कार हो ।

(now) become in this birth an object of humiliations and an abode of frustrated hopes. (36)

भूपमिलन तथा सन्मानदायक—

नूनं न मोहतिमिरावृत-लोचनेन,
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ! ॥३७॥

दृढ निश्चय करि मोह–तिमिर से, मुंदे मुंदे से थे [1]लोचन ।
देख सका ना उनसे तुमको, एक वार हे दुखमोचन ॥
दर्शन कर लेता गर पहिले, तो जिसकी गति प्रबल अरोक ।
मर्मच्छेदी महा अनर्थक, पाता कभी न दुख के थोक ॥

श्लोकार्थ—हे कष्टनिवारकदेव ! मोहरूपी सघन अन्धकार से आच्छादित नेत्रसहित मैंने पूर्वजन्मों में कभी एक वार भी निश्चयपूर्वक आपको अच्छी तरह नहीं देखा, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है ! यदि मैंने कभी आपका दर्शन किया होता तो उत्कट संसार परम्परा के वर्द्धक मर्मभेदी अनर्थ मुझे क्यों दुखी करते ? क्योंकि आपके दर्शन करने वालों को कभी कोई भी अनर्थ दुःख नहीं पहुँचा सकता ॥३७॥

मोह तिमिर छायो दृग मोहि । जन्मान्तर देख्यौ नहिं तोहि ॥
तो दुर्जन मुझ संगति गहैं । मरमछेद के कुवचन कहैं ॥

३७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वराज-पयावसीयरण-कुसलाणं [2]कायबलीणं ।

१—नेत्र । २—कायबली जिनों को नमस्कार हो ।

मंत्र—ॐ अमृते ! अमृतोद्भवे ! अमृतवर्षिणि ! अमृतं श्रावय श्रावय सं सं क्लीं क्लीं (हूँ हूँ ?) ब्लूँ ब्लूँ (ह्राँ ह्राँ ?) द्रां द्रीं (ह्रीं ह्रीं ?) द्रावय द्रावय ह्रीं स्वाहा ।

(—श्री भै० प० क० अ० २ श्लोक ८)

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र से जल मंत्रित कर आचमन करने से भूत, ग्रह तथा शाकिनी आदि के उपद्रवों का नाश होता है ।

ॐ ह्रीं सर्वम (सर्वा) नथमथनाय श्रीजिनाय नमः ।

The sight of God averts adversities.

It is certain, oh Omnipotent one ! that Thou hast not been formerly seen even once by me whose eyes are blinded by the darkness of infatuation. For, otherwise, how can these misfortunes which pierce the vital parts of the heart and which are quickly appearing in a continuous sucession, make me miserable ? (37)

असह्यकष्ट निवारक—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रं,
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥३८॥

देखा भी है, पूजा भी है, नाम आपका श्रवण किया।
भक्तिभाव अरु श्रद्धापूर्वक, किन्तु न तेरा ध्यान किया॥
इसीलिये तो दुःखों का मैं, [1]गेह बना हूं निश्चित ही।
फले न किरिया बिना भाव के, है लोकोक्ति सुप्रचलित ही॥

श्लोकार्थ—हे जनबान्धव ! पहिले किन्हीं जन्मों में मैंने यदि आपका नाम भी सुना हो, आपकी पूजा भी की हो तथा आपका दर्शन भी किया हो तो भी यह निश्चय है कि मैंने भक्तिभाव से आपको अपने हृदय में कभी भी धारण नहीं किया, इसीलिये तो अब तक इस संसार में मैं दुःखों का पात्र ही बना रहा, क्योंकि भावरहित क्रियाएँ फलदायक नहीं होती हैं॥ ३८॥

सुन्यौ कान जस पूजे पाय। नैनन देख्यौ रूप अघाय॥
भक्तिहेतु न भयौ चित चाव। दुखदायक किरिया बिन भाव॥

३८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दुस्सहकट्ठणिवारयाणं खीरसवीणं[2]।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं ऐं अर्हं क्लीं क्रों व्लैं श्रौं यूं नमिऊण पासनाह दुःखारि विजयं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—इस चिन्तामणि मंत्र का श्रद्धापूर्वक सवा लाख बार जप करने से चिन्तित कार्यों की तत्काल सिद्धि होती है।

ॐ ह्रीं सर्वदुःखहराय श्रीजिनाय नमः।

Prayers, etc., void of sincerity are fruitless.

Oh philanthrophist ! though I have
even heard, worshipped and seen Thee,

१—घर। २—क्षीरस्रवी ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो।

yet I have not reverentially enshrined Thee in my heart. Hence I have become an object of miseries; for, actions, (such as hearing, worshipping and seeing Thee) performed without sincerity (Bhava) do not yield fruits. (38)

सर्वज्वरशामक—

त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय.
दुखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥ ३९ ॥

दीन दुखी जीवों के रक्षक, हे करुणासागर प्रभुवर !
शरणागत के हे प्रतिपालक, हे पुण्योत्पादक ! जिनवर ॥
हे जिनेश ! मैं भक्तिभाव वश, शिर धरता तुमरे पग पर ।
दुःखमूल निर्मूल करो प्रभु, करुणा करके अब मुझ पर ॥

श्लोकार्थ—हे दयालुदेव ! आप दीनदयाल, शरणागतप्रतिपाल, दयानिधान, इन्द्रियविजेता, योगीन्द्र और महेश्वर हैं अत: सच्ची भक्ति से नम्रीभूत मुझ पर दया करके मेरे दुखांकुरों के नाश करने में तत्परता कीजिये ॥ ३९ ॥

महाराज सरनागत पाल । पतित उधारन दीन दयाल ॥
सुमरन करहुँ नाय निज शीस । मुझ दुख दूर करहु जगदीस ॥

३९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वजरसंतिकर णं सप्पिसवीणं[1] ।

---

[1]—घृतस्रवी जिनों को नमस्कार हो ।

मंत्र—ह्म्ल्व्र्यूं क्लीं जये विजये जयंते अपराजिते, ज्म्ल्व्र्यूं जंभे, म्म्ल्व्र्यूं मोहे, म्ल्व्र्यूं स्तम्भे, ह्म्ल्व्र्यूं स्तम्भिनि, (अमुकं) मोहय मोहय मम वश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—इस मंत्र के जाप से स्त्री पुरुष का परस्पर में आकर्षण होता है । मनुष्य साधे तो स्त्री और स्त्री साधे तो पुरुष वश में होता है ।

ॐ ह्रीं जगज्जीवदयालवे श्रीजिनाय नमः ।

The poet prays to God to be gracious.

Oh Lord, the cherisher of affection for the miserable ! the Protector ! the holy abode of compassion (or residence of mercy and merit) ! the best amongst those who have controlled their senses ! great God ! have pity on me who devotedly bow to Thee; and show readiness to destroy sprouts of my sufferings. (39)

विषमज्वरविघातक—

निः सङ्ख्यसारशरणं शरणं शरण्य—
मासाद्य सादितरिपु[1]प्रथितावदातम् ।
त्वत्पादपङ्कजमपि प्रणिधानवन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन ! हा हतोऽस्मि ॥४०॥

१—'सादितरिपु' इति भिन्नं पदं वा ।

हे शरणागत के प्रतिपालक अशरण जन को एक शरण।
कर्मविजेता त्रिभुवन नेता, चारु चन्द्रसम विमल चरण॥
तव पद-पङ्कज पा करके हे, प्रतिभाशाली बड़भागी।
कर न सका यदि ध्यान आपका, हूँ अवश्य तब हतभागी॥

श्लोकार्थ—हे भुवनपावन! आपके अशरणशरण, शरणागतप्रतिपालक, कर्मविजेता और प्रसिद्ध प्रभावशाली चरण-कमलों को प्राप्त करके भी यदि मैंने उनका ध्यान नहीं किया तो मुझ सरीखा अभागा कोई नहीं॥ ४०॥

कर्मनिकंदन महिमा सार। असरनसरन सुजस विस्तार॥
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय। तो मुझ जनम अकारथ जाय॥

४० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गहसीयवाहविणासयाणं मधुसवीणं[1]।

मंत्र—ॐ नमो भगवते मल्व्यूं नमः स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र के जाप जपने से सब प्रकार के विषमज्वर दूर होते हैं।

ॐ ह्रीं सर्वशान्तिकराय श्रीजिनचरणाम्बुजाय नमः।

Even after having attained as a refuge Thy lotus-feet, which are the resting place of innumerable exellences, which are an object fit to be resorted to and the which has destroyed the famous

---

१—महुसवीणं तथा महुरसवाणं इत्यपि पाठः। मधुस्रवी जिनों को नमस्कार हो।

prowess of foes (like attachment or which has destroyed enemies and which is well-known for purity), If I am lacking in the profound religious meditation, oh Purifier of the universe (or pure in the worlds) ! I am fit to be killed and hence alas, I am undone. (40)

अस्त्रशस्त्रविघातक—

देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिलवस्तु—सार !
संसारतारक ! विभो ! भुवनाधिनाथ ! ।
त्रायस्व देव ! करुणाह्रद ! मां पुनीहि,
सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ॥४१॥

अखिल वस्तु के जान लिये हैं, सर्वोत्तम जिसने सब सार ।
हे जगतारक ! हे जगनायक ! दुखियों के हे करुणागार ॥
वन्दनीय हे दयासरोवर ! दीन दुखी की हरना त्रास ।
महा-भयङ्कर भवसागर से, रक्षा कर अब दो सुखवास ॥

श्लोकार्थ—हे देवेन्द्रवन्द्य सर्वज्ञ, जगततारक, त्रिलोकीनाथ, दयासागर, जिनेन्द्रदेव ! आज मुझ दुखिया की रक्षा करो तथा अतिभयानक दुःख-सागर से बचाओ ।

सुरगन वन्दित दयानिधान । जगतारन जगपति जगजान ॥
दुखसागर तें मोहि निकास । निरभै थान देहु सुखरास ॥

४१ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वप्पलाइकारयाणं [1] अमइसवीणं ।

१—अमृतस्रवी जिनों को नमस्कार हो ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्लूं नमः स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र का जाप करने से वैरी के अस्त्र शस्त्रादि कुण्ठित हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं जगन्नायकाय श्रीजिनाय नमः।

Oh object of worship for the lords of gods! Conversant with the essence of every object! Saviour from this worldly existence (the ferryman that enables to cross the ocean of existence)! Pervader of the Universe! Ruler of the world! save me, oh God! oh reservoir of compassion! purify me who am now-a-days sinking in the terrifying sea of sufferings. (41)

स्त्रीसंबंधिसमस्तरोगशामक—

यद्यस्ति नाथ ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः[1]।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य ! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥

एकमात्र है शरण आपकी, ऐसा मैं हूँ दीनदयाल।
पाऊँ फल यदि किञ्चित करके, चरणों की सेवा चिरकाल॥
तो हे तारनतरन नाथ हे, अशरण शरण मोक्षगामी।
बने रहें इस परभव में, बस मेरे आप सदा स्वामी॥

१—सन्तति इत्यपि पाठः।

श्लोकार्थ—हे नाथ ! आपकी स्तुति कर मैं आपसे अन्य किसी फल की चाह नहीं रखता, केवल यही चाहता हूँ कि भव भवान्तरों में सदा आप ही मेरे स्वामी रहें, जिससे कि मैं आपको अपना आदर्श बना कर अपने को आपके समान बना सकूं ॥ ४२ ॥

मैं तुम चरन कमल गुन गाय। बहुविधि भक्ति करी मन लाय ॥
जन्म जन्म प्रभु पावहुं तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि ॥

४२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो इत्थिरत्तरो अणासयाणं अक्खीणमहाणसाणं[1] ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं असिआउसा भूर्भुवः स्वः चक्रेश्वरी देवी सर्वरोगं भिंद भिंद ऋद्धिं वृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र का प्रतिदिन १०८ बार जाप करने से स्त्री सम्बन्धी समस्त कठिन रोगों का नाश होता है और सर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं ।

ॐ ह्रीं अशरणशरणाय श्रीजिनाय नमः ।

Oh Lord ! if there can be any reward whatsoever for my having been devoted to Thy lotus-feet for a series of births, mayest Thou yield protection to me who have Thee as the only refuge (or Thee alone as the refuge) and mayest Thou alone be my master in this

---

१—अक्षीणमहानस ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो ।

world and even in my future life (incarnations). (42)

बन्धनमोचक एवं वैभववर्द्धक—

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः ।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः[1],
ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ॥४३॥

(आर्या छन्द)

जननयनकुमुदचन्द्र-प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥४४॥

हे जिनेन्द्र ! जो एकनिष्ठ तव, निरखत इकटक कमल-वदन ।
भक्तिसहित सेवा से पुलकित, रोमाञ्चित है जिनका तन ॥
अथवा रोमावलि के ही जो, पहिने हैं कमनीय वसन ।
यों विधिपूर्वक स्वामिन् तेरा, करते हैं जो अभिनन्दन ॥

(४४)

जन दृगरूपी 'कुमुद' वर्ग के, विकसावनहारे राकेश[2] ! ।
भोग भोग स्वर्गों के वैभव, अष्टकर्म मल कर निःशेष ॥
स्वल्पकाल में मुक्तिधाम की, पाते हैं वे दशाविशेष ।
जहां सौख्य साम्राज्य अमर है, आकुलता का नहीं प्रवेश ॥

भावार्थ—हे जितेन्द्रिय जिनेश्वर ! जो भव्यजन उपरोक्त प्रकार से प्रमादरहित होकर आपके दैदीप्यमान मुखारबिन्द

१—'लक्षं लक्ष्यं शरव्यकम्' इत्यभिधानचिन्तामणिकोषे का. ३ श्लोक ४४१, २—चन्द्र ।

की ओर टकटकी लगाकर और सघन तथा उठे हुए रोमाञ्च-रूपी वस्त्र पहिन कर विधिपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं, वे भव्य देवलोक की सुखकर विविध सम्पत्तियों को भोग कर अष्टकर्मरूपी मल को आत्मा से दूर कर अविलम्ब अविनाशी मोक्ष सुख पाते हैं ॥४३॥४४॥

इहि विधि श्रीभगवन्त, सुजस जे भविजन भाषहिं।
ते निज पुण्य भँडार, संचि चिरपाप प्रनासहिं॥
रोम रोम हुलसंत अंग, प्रभु गुन मन ध्यावहिं।
स्वर्ग सम्पदा भुंज, वेग पंचम गति पावहि॥
यह 'कल्याण मन्दिर' कियौ, कुमुदचन्द्र की बुद्धि।
भाषा कहत बनारसी, कारन समकित सुद्धि॥

४३ ऋद्धि--ॐ ह्रीं अर्हं णमो वंदिमोअगाणं [1]सव्वसिद्धायदणाणं

मंत्र—ॐ नमो भगवति। हिडिम्बवासिनि! अल्लल्लमांसप्पियेन ह्यलमडलपइट्ठिए तुह रणमत्ते पहरणदुट्ठे आयासमंडि! पायालमंडि सिद्धमंडि जोइणिमंडि सव्वमुहमंडि कज्जलं पडउ स्वाहा।

(—श्री भै० प० क० अ० ६ श्लो० २२)

विधि—अँधियारी अष्टमी के दिन ईशान की ओर मुख करके इस मंत्र का जाप जपे। काले धतूरे के तेल का दीपक जला कर नारियल की खोपड़ी में काजल पाड़े। उस काजल से कपाल पर त्रिशूल का निशान बनाने तथा नेत्रों में लगाने से सब प्रकार के भय नष्ट होते हैं और चित्त की उद्विग्नता शांत होती है।

१—सम्पूर्ण सिद्धायतनों को नमस्कार हो।

ॐ ह्रीं चित्तसमाधि स (सु?) सेविताय श्रीजिनाय नमः।

४४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खयसुहदायगस्स [1]वड्ढमाणबुद्धिरिसिस्स।

मंत्र—ॐ नट्ठट्ठमयट्ठाणे, पणट्ठकम्मट्ठनट्ठसंसारे।
परमट्ठनिट्ठिअट्ठे अट्ठगुणाधीसरं वंदे॥

विधि—राई, नमक, नीम के पत्ते, कड़वी तूमड़ी का तेल तथा गूगल इन पांचों चीजों को एकत्रित कर उक्त मंत्र से मंत्रित करे, पश्चात् पिछले पहर प्रतिदिन ३०० बार हवन करने से रोग, दुश्मन तथा कष्टों का नाश होता है।

ॐ ह्री परमशांतिविधायकाय श्रीजिनाय नमः।

The poet sums up the panegyric and suggests his name.

Oh Lord of the Jinas! oh Omnipotent Being! the Bhavyas who compose Thy hymn in accordance with the prescribed rules, with their mind thus concentrated, with portions of their body thickly covered up with hair standing erect; and with their eyes (attention) fixed upon the pure face-lotus of Thy image, and whose heap of dirt is destroyed, attain in no time, oh Moon (in opening) the night-lotuses (Kamuda-Chandra) (in the form) of eyes of

---

1—वर्धमानबुद्धि ऋद्धिधारी ऋषि को नमस्कार हो।

human beings ! salvation after enjoying the exceedingly brilliant prosperities of heaven. (43–44)

इति श्री कल्याणमन्दिरस्त्रोत्रं समाप्तम् ।

यन्त्र, मंत्र, गुण वा फल विवरण
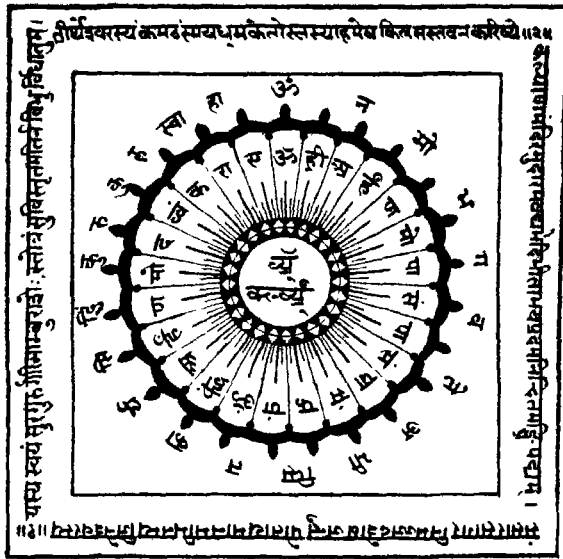
श्लोक—१-२

ऋद्धि – ॐ ह्रीं अर्हं णमो पासं पासं पास फणं ॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दव्वंकराए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते अभीप्सितकार्यसिद्धि कुरु कुरु स्वाहा ।

गुण – इस ऋद्धिमंत्र के प्रभाव तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रसाद से लक्ष्मी (धन) का लाभ एवं मनोवांछित कार्य सिद्ध होते हैं ।

फल—प्रथम द्वितीय श्लोक सहित ऋद्धि-मंत्र की भावपूर्वक आराधना से भद्दलपुर (भेलसा) के अत्यन्त भद्र परिणामी सुभद्र श्रेष्ठी के मनोभिलषित इष्ट कार्यों की सिद्धि हुई थी ।
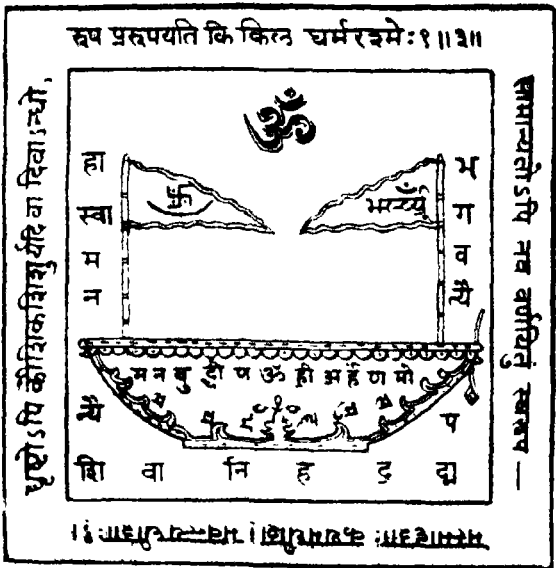
श्लोक—३

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो समुद्दे (द ?) भयं (य ?) साम्यति (समन ?) बुद्धीणं ॥

मंत्र — ॐ भगवत्यै पद्मद्रहनिवासिन्यै नमः स्वाहा ॥

गुण—इसके प्रभाव तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रसाद से पानी का भय नहीं रहता और न दरयाव में डग-मगाता हुआ जहाज डूबता है।

फल—पाटलिपुत्र (पटना) नगर के विक्रमसिंह राजा ने तृतीय श्लोक सहित ऋद्धि-मंत्र की भावसहित आराधना से रत्नों से लदे जहाज की समुद्र के तूफान से रक्षा की थी।
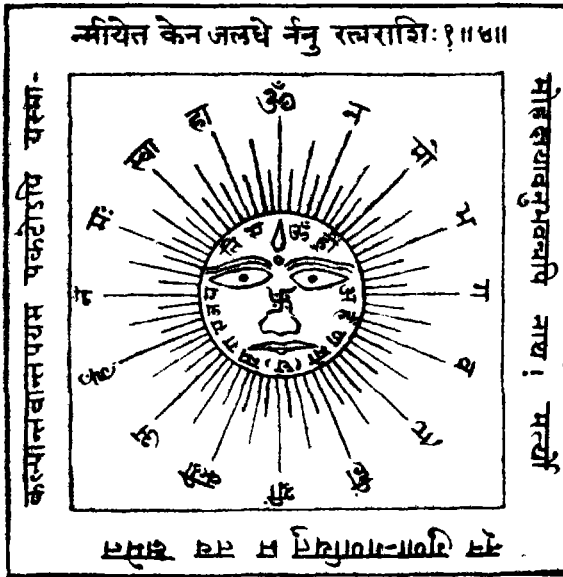
श्लोक—४

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो धम्मराए जयतिए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः स्वाहा ॥

गुण—इस प्रकार मंत्र के प्रभाव तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रसाद से असमय में गर्भपात वा अकालमरण नहीं होता और सन्तान चिरजीवी होती है।

फल—अयोध्या के राजा यशकीर्ति की राजमहिषी यशावती देवी ने चतुर्थ काव्य सहित ऋद्धि-मंत्र का आराधन कर अपने गर्भ की रक्षा की और यशस्वी राजकुमार को प्रसव किया था।

श्लोक—५

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो धणवुद्धि (वुड्ढि?) कराए ॥

मंत्र—ॐ पद्मिने नमः ॥

गुण—इस प्रकार इस मंत्र के प्रभाव तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रसाद से चोरी गया हुआ और जमीन में गड़ा हुआ धन एवं गुमा हुआ गोधन प्राप्त होता है।

फल—कारंजा के भूपणदत्त महाजन ने पंचम काव्य सहित उक्त मंत्र की साधना से अपनी गुप्त लक्ष्मी और चोरों द्वारा चुराये हुए गोधन को प्राप्त किया था।

श्लोक—६

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पुत्तइच्छी (त्थि ?) कराए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते ह्रीं श्रीं ब्रां ब्रीं च्रां च्रीं प्रौं ह्रौं नमः (स्वाहा) ॥

गुण—सन्तति और सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

फल—उज्जयिनी नगरी में प्रसिद्ध हेमदत्त श्रेष्ठी ने एक मुनि के उपदेश से वृद्धावस्था में षष्ठ काव्य सहित उक्त मंत्र की आराधना से पुत्ररत्न को प्राप्त किया था।

श्लोक—७

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो माहणे झाणाए ॥
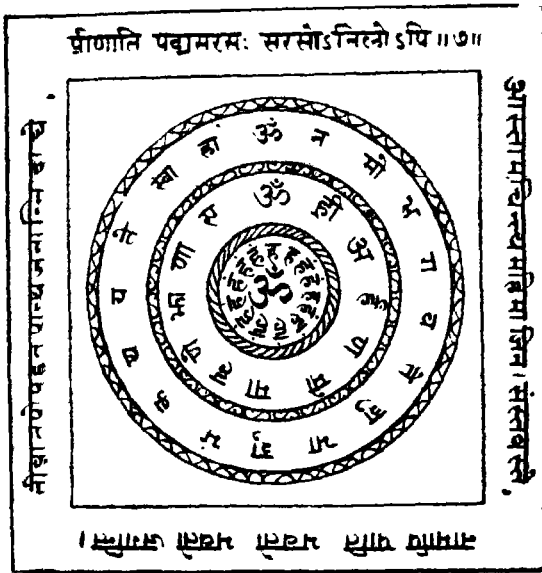
मन्त्र—ॐ नमो भगवते शुभाशुभं कथयित्रे स्वाहा ॥

गुण—परदेश गये हुये पति अथवा स्वजन सम्बन्धी की २७ दिन के भीतर खबर मिलती है। यंत्र को पास में रखने से साधक जिसकी इच्छा करता है उसका आकर्षण साधक के प्रति होता है।

फल—हांसी (जिला हिसार) की राजकुमारी प्रियंगु-लता ने अपने पति का जो विवाह के उपरान्त से ही विदेश में जीवन यापन कर रहा था सप्तम काव्य सहित उक्त महामंत्र के प्रभाव से सकुशल समागम प्राप्त किया था।
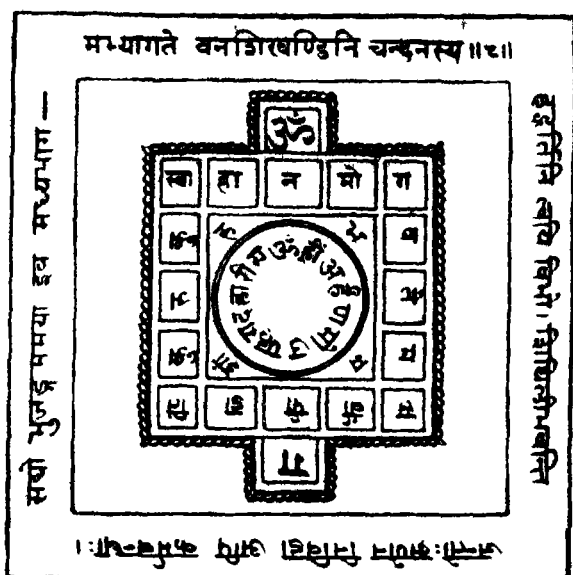
श्लोक ८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उन्ह(एह?) गदहारीए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते मम सर्वाङ्गपीडाशांतिं कुरु कुरु स्वाहा ।

गुण—१८ प्रकार का उपदंश, पित्तज्वर तथा सर्व प्रकार की उष्णता शान्त होती है ।

फल—श्रावस्ती नगरी का चण्डकेतु ब्राह्मण उपदंश की असह्य पीड़ा से मरणासन्न हो रहा था । अष्टम काव्य सहित उक्त मंत्र की आराधना से नवीन जीवन प्राप्त हुआ था ।

श्लोक ९—

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो को पं हं सः ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिभुवन हूं स्वाहा ॥

गुण—सर्प, गोह, बिच्छू और छिपकली आदि विषैले जन्तुओं का विष असर नहीं करता। विषैले जन्तुओं के सताये जाने पर ऋद्धि-मंत्र को बोलते हुए १०८ वार झाड़ना चाहिये।

फल—काशीदेश के सिद्धसेन ब्राह्मण ने नवम काव्य सहित मंत्र की आराधना से काले सर्प द्वारा सताये हुए विदग्ध-सेन को प्राणदान दिया था।
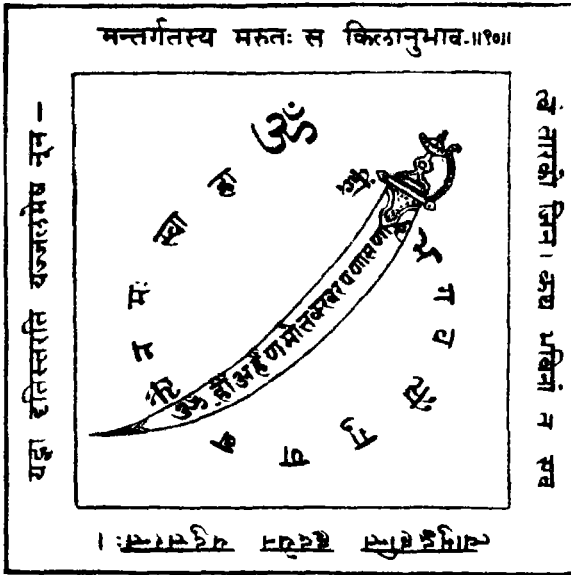
श्लोक १०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तक्क (क्ख?) रपणासणाए ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं भगवत्यै गुणवत्यै नमः स्वाहा ॥

गुण—चोर, ठग वगैरह के भय का नाश होता है।

फल—बाराणसी नगरी के राजा विश्वसेन ने भक्ति पूर्वक दशवें काव्य सहित मंत्र की जाप जपने से चोरों, ठगों और डाकुओं द्वारा आतङ्कित प्रजा को अभयदान दिया था।
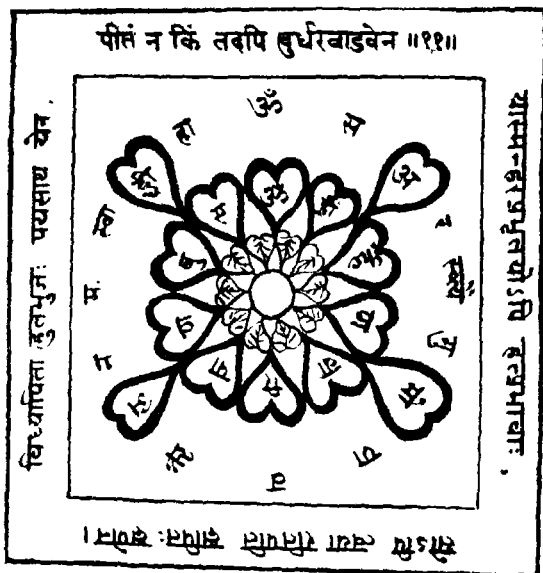
श्लोक ११—

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो वारिबाल (पालण?) बुद्धीए ॥

मंत्र—ॐ सरस्वत्यै गुणवत्यै नमः स्वाहा ॥

गुण—यंत्र पास रखने से साधक पानी में नहीं डूबता है। जैनशासन की रक्षिका देवी आराधक की अथाह जल से रक्षा करती है तथा कुदेवादिकों का भय नष्ट होता है।

फल—मगधदेश के कंचनपुर नगर के प्रतापी राजकुमार ने शत्रुओं द्वारा समुद्र में गिराये जाने पर ग्यारहवें काव्य सहित उक्त मंत्र की आराधना से अपनी रक्षा की थी।

श्लोक १२—

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो अग्गल(भय)वज्जणाए ॥

मंत्र—ॐ नमो (भगवत्यै) चण्डिकायै नमः स्वाहा ॥

गुण—हर प्रकार का अग्निभय नष्ट होता है ! चुल्लू भर पानी उक्त मंत्र से मंत्रित कर अग्नि पर डालने से वह शान्त हो जाती है और मंत्र का आराधक उस अग्नि पर चल सकता है । तो भी जलता नहीं है ।

फल—बाराणसी नगरी के देवदत्त बढ़ई ने मुनि द्वारा उपदिष्ट कल्याणमन्दिर के बारहवें श्लोक सहित उक्त मंत्र की आराधना से प्रचण्ड दावानल को शान्त किया था ।
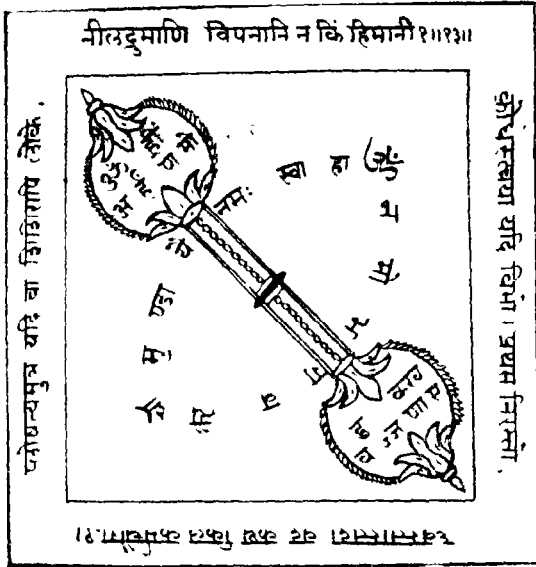
श्लोक १३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो इक्खवज्जणाए ॥

मंत्र—ॐ नमो (भगवत्यै) चामुण्डायै नमः स्वाहा ॥

गुण—सात दिन तक प्रतिदिन झारी भर पानी उक्त मंत्र से १०८ वार मंत्रित कर खारे जल क कुएँ बावड़ी आदि में डालने से पानी अमृततुल्य हो जाता है।

फल—श्री जम्बूस्वामी के समय श्रावस्ती नगरी के सोमशर्मा ब्राह्मण ने अपने बगीचे की खारी बावड़ी को उक्त मंत्र द्वारा अमृत के समान मधुर जल वाली करके जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की थी।
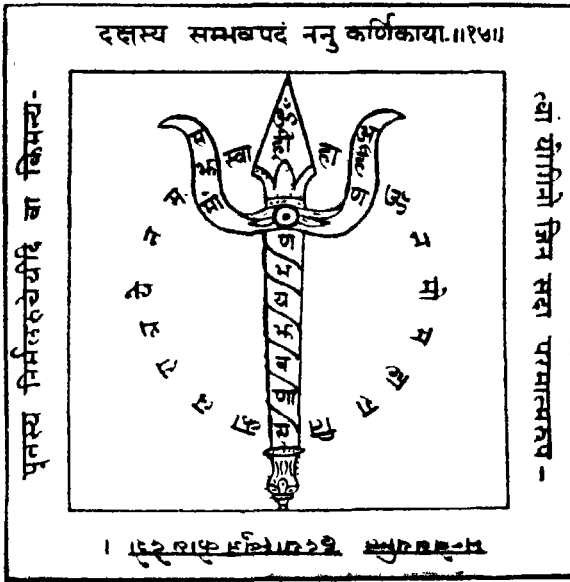
श्लोक १४—

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो भ्(भ?) सण (भय) भ्रूस (भव?) णाए॥

मंत्र-ॐ नमो (महाराति ?) कालरात्रि (त्रये ?) नमः स्वाहा॥

गुण—शत्रु क्रोध छोड़ कर वैरभाव तज देता है और निर्मल विचार वाला बन जाता है अथवा उसका नाश हो जाता है।

फल—दतिया राज्य के राजकुमार भद्र ने अपने शत्रु राजा भीम का वैरभाव चौदहवें काव्यसहित उक्त मंत्र के आराधन से दूर कर अपना परम मित्र बना लिया था।
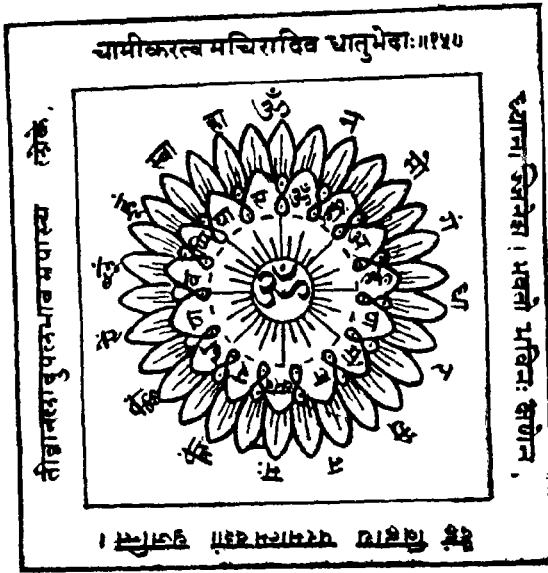
श्लोक १५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तक्खरधणाप (ब?) प्पियाए ॥

मंत्र—ॐ नमो गंधारि (रयै?) नमः श्रीं क्लीं ऐं ब्लूं ह्रूं स्वाहा ॥

गुण—चोरी गई हुई वस्तु वापिस मिलती है।

फल—राजगृही नगरी के दिव्यस्वामी ब्राह्मण ने १५ वें श्लोकसहित उक्त मंत्र को सिद्ध करके चोरी गया हुआ अपना धन मंत्राराधना के प्रभाव से पुनः प्राप्त किया था।
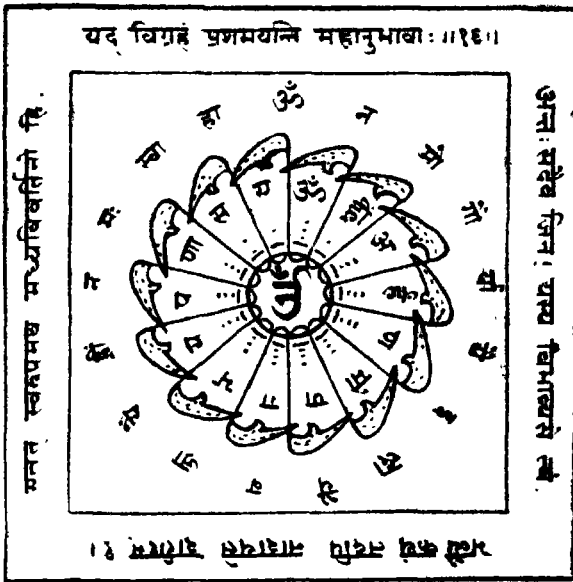
श्लोक १६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो णगभयपणासए ॥

मन्त्र—ॐ नमो गौरी (गौर्यायै ?) इन्द्रे (इन्द्रायै?) वज्रे (वज्रायै?) ह्रीं नमः स्वाहा ॥

गुण—पर्वत पर भी उपसर्ग नहीं होता तथा बीहड़ वन में भी भय का नाश होता है।

फल—द्वारकापुरी नगरी में अर्थदत्त श्रेष्ठी ने जो कि दुष्ट डाकुओं द्वारा निर्जन वन में ले जाया गया था, कल्याण मन्दिर के १६ वें श्लोकसहित उक्त मंत्र के चिन्तवन से छुटकारा पाया था।

श्लोक—१७

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुद्ध (द्रु ?) बुद्ध (द्धि ?) णासए ॥
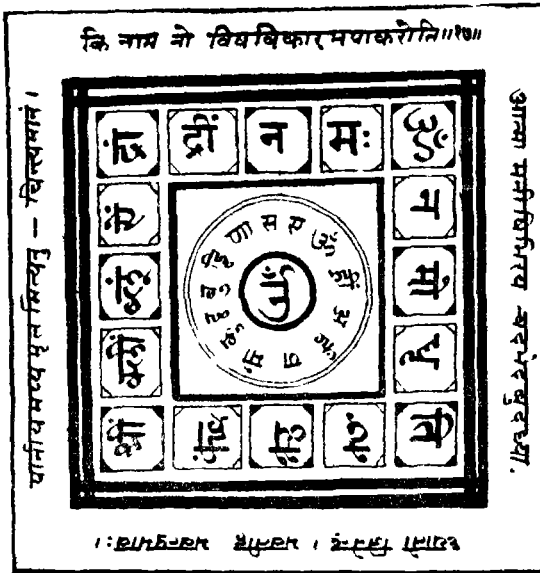
मंत्र—ॐ नमो धृतिदेव्यै ह्रां श्रीं क्लीं ब्लूँ ऐं द्रां द्रीं नमः (स्वाहा)

गुण—यंत्र पास रखने पर विग्रह (वैर-विरोध) शांत होता है और विजय प्राप्त होती है।

फल—कौशाम्बी देश के मृगापुत्र राजा ने भीषण संग्राम में पराक्रमी राजा भद्रबाहु को इस मंत्र के प्रभाव से पराजित किया था।

श्लोक—१८

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पासे सिद्धा सुणंति ? ॥

मंत्र—ॐ नमो उ (सु ?) मतिदेव्यै विषनिर्णाशिन्यै नमः स्वाहा ॥

गुण—जिस स्त्री या पुरुष को भयङ्कर भुजङ्ग ने काटा हो उसके मुख, शिर और ललाट पर उक्त मंत्र से मंत्रित जल के छींटे चुल्लू में भर भर कर उस समय तक मारता रहे जब तक वह निर्विष न हो जाय। इस मंत्र से सर्प का विष उतर जाता है।

फल—कम्पिला नगरी के धर्मगोप नाम के ग्वाल ने एक मुनि द्वारा प्रदत्त उक्त महामंत्र के प्रभाव से सर्प द्वारा सताये गये सैकड़ों मानवों को प्राणदान दिया था।

श्लोक—१९

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खिणदे (द ?) णासए ॥
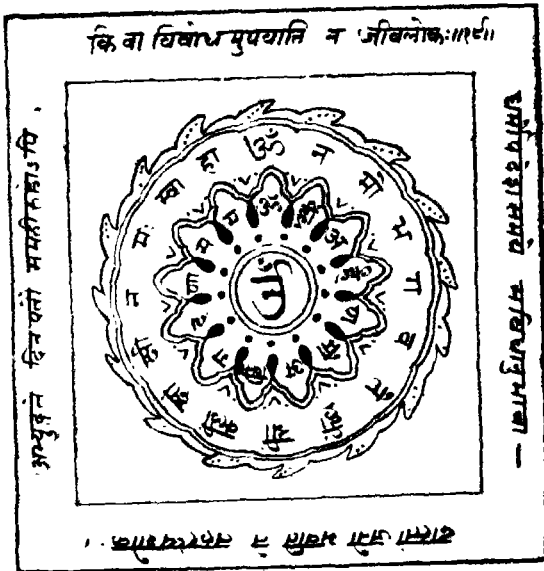
मंत्र—ॐ (नमो भगवते) ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रां ह्रीं नमः (स्वाहा)

गुण—नेत्रपीड़ा दूर होती है। जब आँख आई हुई हो तब भोजपत्र पर रसौंद से लिख कर गले में बाँधना चाहिये।

फल—अंगदेश की चम्पापुर नगरी के विजयभद्र राज-श्रेष्ठी ने विदेश में कुसाधुओं के मंत्रबल से नेत्रज्योतिरहित साथियों को इस महामंत्र की साधना से पुनः ज्योति प्रदान की थी।
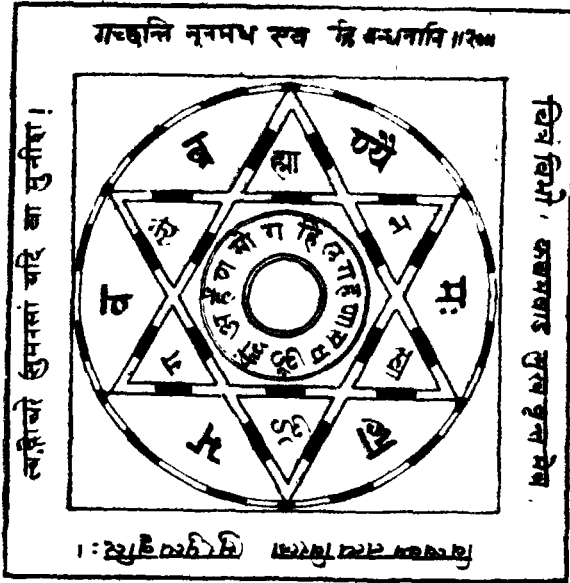
श्लोक—२०

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो गिल्ल (गहिल ?) विल्ल (गह !) पा (णा ?) सए ॥

मंत्र—ॐ (भगवत्यै) ब्रह्माणि (ण्यै ?) नमः (स्वाहा)

गुण—विधिपूर्वक मंत्राराधन से उच्चाटन अर्थात् जिसे साधक नहीं चाहता उसका निराकरण होता है।

फल—कुरुजाङ्गल देश की हस्तिनागपुर नगर निवासिनी राजकुमारी अनङ्गलीला ने २० वें श्लोक सहित उक्त मंत्र की आराधना से कामान्ध पुरुष का उच्चाटन कर अपने सतीत्व की रक्षा की थी।

श्लोक—२१

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पुप्फि (य) ग (त ? रु ब (प ?) ताए ॥
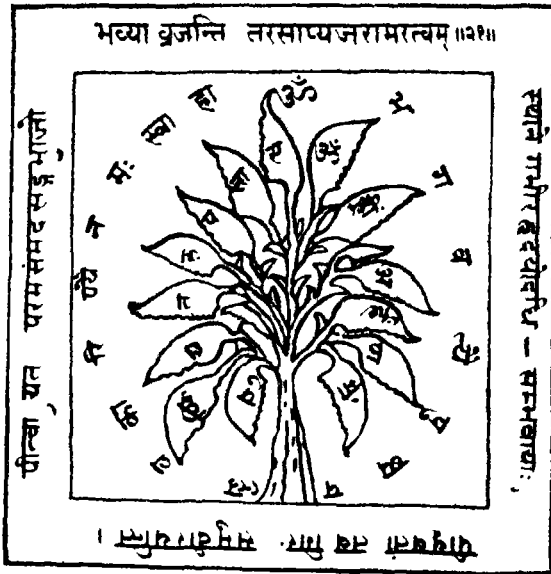
मन्त्र—ॐ भगवती (त्यै ?) पुष्पपल्लवकारिणि (ण्यै ?) नमः (स्वाहा) ॥

गुण—सूखे हुए वन-उपवन के वृक्ष पुनः पल्लवित होने लगते हैं।

फल—राजपूताना प्रान्त की नागौर नगरी के माहका नामक माली ने एक मुनि द्वारा प्रदत्त कल्याणमन्दिर के २१ वें श्लोक सहित उक्त मंत्र की साधना करके शुष्क उपवन के वृक्षों को पुनः पल्लवित कर लोगों को आश्चर्य चकित किया था और जैनधर्म की प्रभावना बढ़ाई थी।
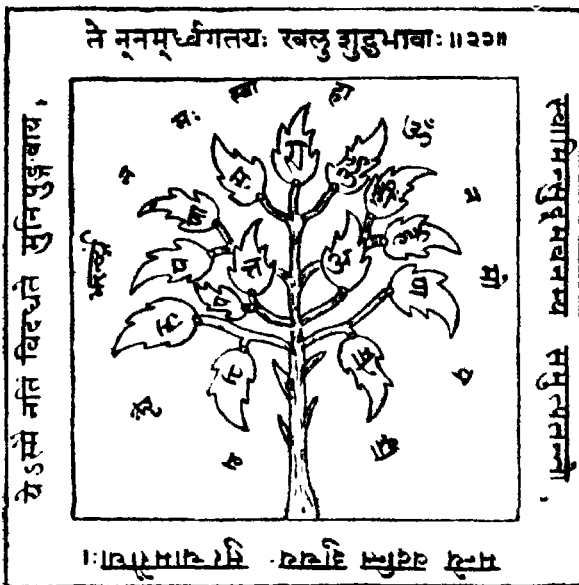
श्लोक—२२

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तरुव (प ?) त्त पणासए ॥

मंत्र—ॐ नमो पद्मावत्यै म्ल्व्यूँ नमः (स्वाहा) ॥

गुण—वन उपवन के जिन वृक्षों में किसी कारण से फल लगना बन्द हो जाते हैं उन में पुनः मधुर फल पैदा होने लगते हैं।

फल—कौशाम्बी नगरी के सुमणिदत्त राजश्रेष्ठी के उद्यान में राघव माली ने मुनि द्वारा प्राप्त इस स्तोत्र के २२ वें श्लोक सहित उक्त मंत्र की साधना द्वारा फलरहित वृक्षों को मधुर फलदायक किया था।

श्लोक—२३

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वज्ज (ज्झ ?) य हरणाए ॥
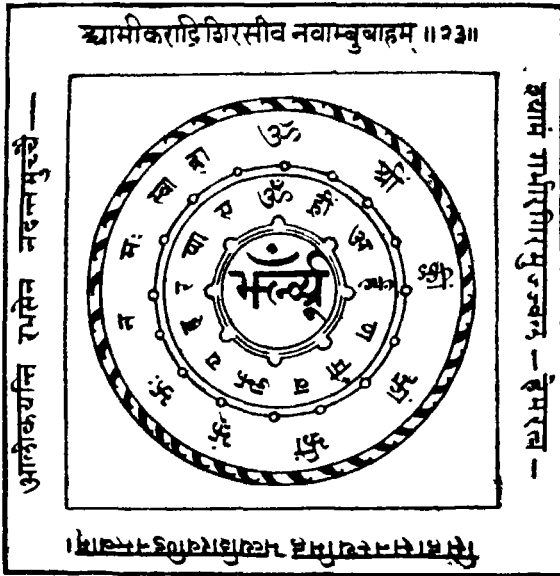
मंत्र—ॐ नमो (×) श्रीं क्लीं म्रां म्रीं म्रूं म्रः नमः (स्वाहा) ॥

गुण—राज दरबार में जय, सन्मान तथा हर जगह मान्यता होती है।

फल—अनंगपुर नगर के राजा वीरसुबाहु द्वारा पदच्युत राज्य सचिव सुमति ने इस स्तोत्र के २३ वें श्लोक सहित उक्त मंत्र की आराधना से पुनः राज्य-सन्मान प्राप्त किया था।

श्लोक—२४

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगास ग (गा ?) मिथाए ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रां श्रीं षोडशभुजे (जायै ?) पद्मे (भिन्यै)
श्रों (श्रौं ?) हूं ह्रौं नमः (स्वाहा) ॥

गुण—हाथ से गया हुआ अपना राज्य तथा स्थान पुनः प्राप्त होता है।

फल—ताम्रलिप्ती नगर के राजा चन्द्रसेन ने शत्रु द्वारा विजित प्रदेश पर इस स्तोत्र के २४ वें श्लोक सहित उक्त मंत्र की आराधना से पुनः अपना स्वामित्व स्थापित किया था ।
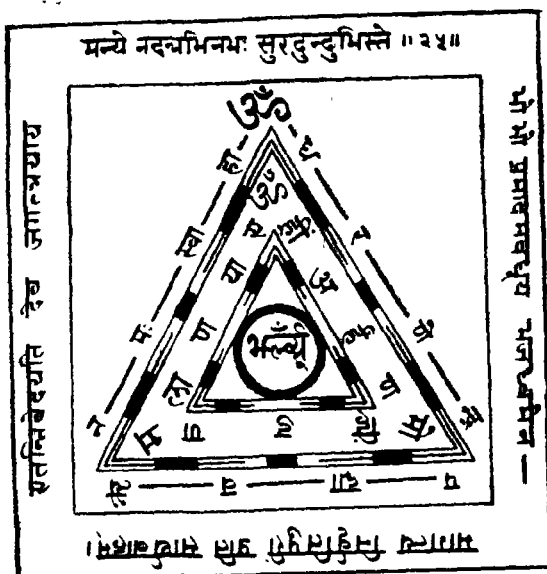
श्लोक—२५

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो हिडक (हिंडण ?) मलाणयाए ॥

मंत्र—ॐ नमो (×) धरणेन्द्रपद्मावत्यै नमः (स्वाहा)

गुण—रोग, शोक और पीड़ा का नाश होता है। हर्ष बढ़ता है तथा सर्व प्रकार के रोग शान्त होते हैं।

फल—प्रतिष्ठान देश की कामन्दिका नगरी के स्वार्थदत्त नामक महाजन ने इस स्तोत्र के २५ वें काव्य सहित उक्त मंत्र की साधना द्वारा असाध्य रोगों को शान्त किया था।
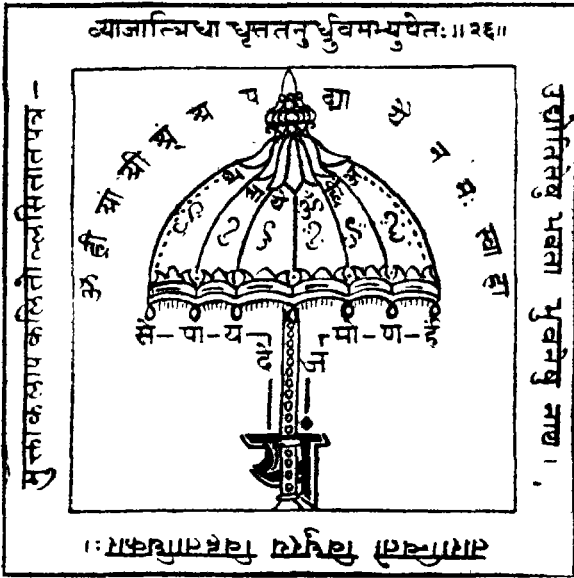
श्लोक—२६

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जयंदेयपासेवत्ताये ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रा श्रीं श्रूं श्रः पद्मे (आयै ?) नमः (स्वाहा)

गुण—राज्यसभा में साधक की सम्मति तथा उसके कहे हुए वचन सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

फल—शिवपुर नगर के दीर्घदर्शी नामक मंत्री ने इस स्तोत्र के छब्बीसवें काव्य सहित उक्त मंत्र की साधना से राज्य-दरबार में अपने वचनों को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया था।
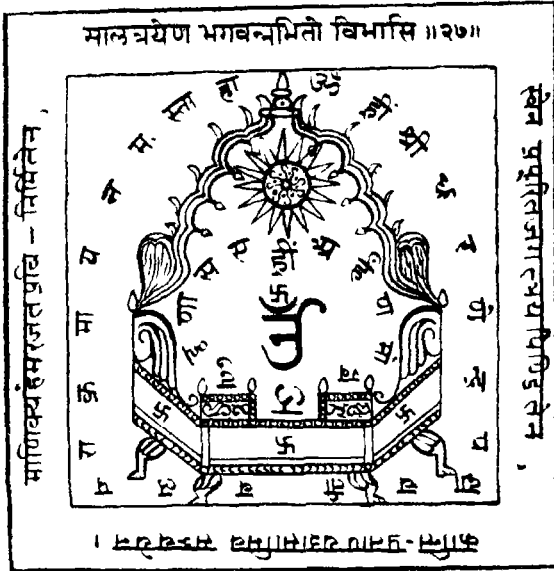
श्लोक—२७

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खल-दुट्ठणासए ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं धरणेन्द्रपद्मावतीबलपराक्रमाय नमः (स्वाहा)

गुण—दुश्मन पराजय को प्राप्त होता है और वैर-विरोध छोड़ कर शत्रु शान्त होता है।

फल—हर्षवती नगरी के अधिपति मेघमाली ने इस स्तोत्र के २७ वें काव्य सहित उक्त मंत्र के प्रभाव से शत्रु राजाओं को परास्त कर उन्हें अपना मित्र बनाया था।
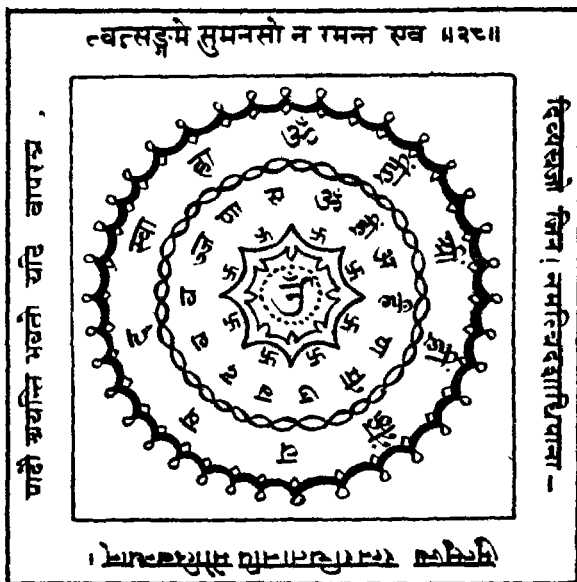
श्लोक—२८

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उव (दव) वज्जणाए ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्रों (क्रौं ?) वषट् स्वाहा ॥

गुण—संसार में द्वितीया के चन्द्रमा की तरह निरन्तर यश और कीर्ति बढ़ती है और जगह जगह विजय प्राप्त होती है।

फल—विशालापुरी नगरी में विश्वभूषण ब्राह्मण ने इस स्तोत्र के २८ वें काव्य सहित इस मंत्र के आराधन से राज्य में यश प्राप्त किया था।
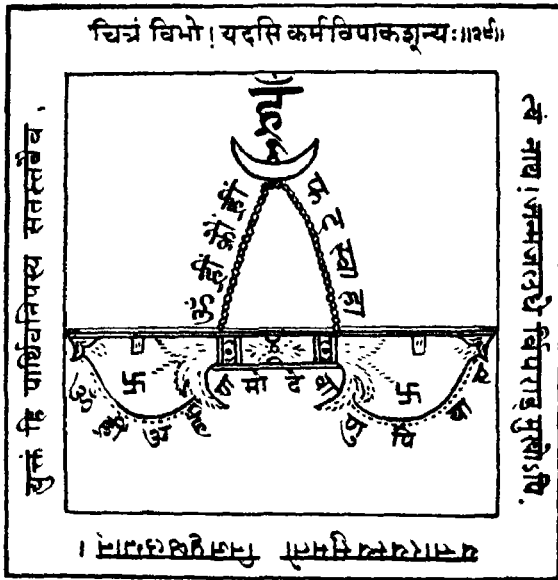
श्लोक—२६

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो देवाणुप्पि (पि ?) याए ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं क्रौं ह्रीं हूँ फट् स्वाहा ॥

गुण—सर्वजन प्रसन्न होते हैं। जिसको प्रसन्न करना है उसे उक्त मंत्र से मंत्रित सुपारी, इलायची अथवा लवँग खिलावे।

फल—सिंहपुरी के लखीधर नामक ग्वाल ने इस स्तोत्र के २६ वें काव्य सहित उक्त मन्त्र की साधना द्वारा अनेक पुरुषों को प्रसन्न किया था।

श्लोक—३०

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो मद्दा (बम्ना ×) ए ॥
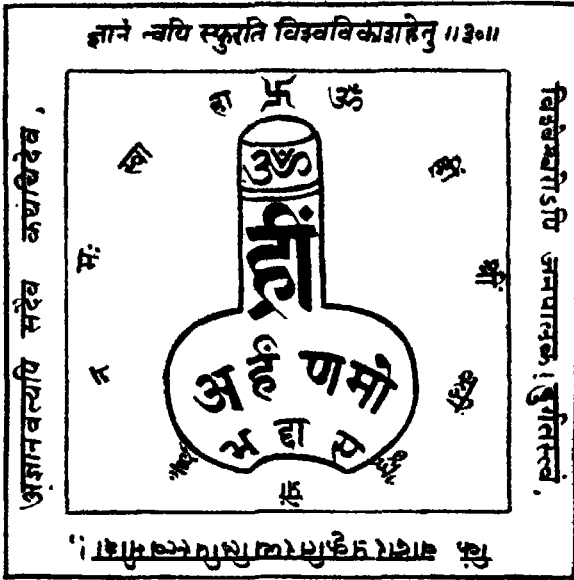
मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूँ प्रौं (प्रों ?) ह्रूँ नमः स्वाहा ॥

गुण—अपरिपक्व (कच्चे) मिट्टी के घड़े द्वारा कुएँ से पानी निकाला जाता है।

फल—दक्षिण मथुरा की गुणवती नाम की स्त्री ने इस स्तोत्र के ३० वें श्लोक सहित उक्त महामंत्र की आराधना करके मिट्टी के कच्चे घड़े से पानी निकाल कर लोगों को आश्चर्य-चकित किया था।
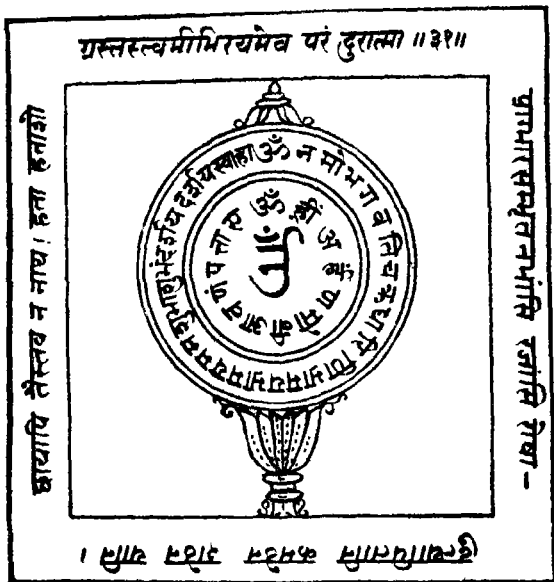
श्लोक—३१

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वी (बी?) या (आ?) वण (णं?) ब (प?) त्ताए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवति चक्रधारिणि भ्रामय भ्रामय, मम शुभाशुभं दर्शय दर्शय स्वाहा।

गुण—पूँछे गये शुभाशुभ प्रश्न का फल ज्ञात होता है।

फल—क्षिप्रा नदी के तट पर उज्जयिनी नगर के कनककान्त ब्राह्मण ने इस मंत्र का फल प्राप्त किया था।

श्लोक—३२

ऋद्धि—ॐ अर्हं णमो अट्ठमट्ट (द ?) णासए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते मम शत्रून् बंधय बंधय, ताडय ताडय, उन्मूलय उन्मूलय, छिंद छिंद, भिंद भिंद स्वाहा ॥

गुण—दुष्ट पुरुष का बल निर्बल होता है, शत्रु की सांघातिक शस्त्रादिविद्या का जोर नष्ट होता है तथा वह अपनी दुष्टता को छोड़ देता है !

फल—राजग्रही नगरी के विश्व-विख्यात शिव-मंदिर में विराजमान सत्यशील मुनि ने इस स्तोत्र का पाठ करते हुए उक्त मंत्र के प्रभाव से मंदिर की अधिष्ठात्री देवी द्वारा कृत उपसर्गों पर विजय प्राप्त की थी तथा उसकी दुष्टता का दलन किया था।

श्लोक ३३—

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो जविसाय (प?) खित्ताए ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्री वृषभादितीर्थङ्करेभ्यो नमः स्वाहा ॥

अथवा—

ॠ असं असु पसु चंपु शीश्रं वावि अघशाकुं अममुनने पाम।

गुण—अतिवृष्टि, उल्कापात, अनावृष्टि एवं टिड्डीदल को रोक कर संभावित दुर्भिक्ष से जनता की रक्षा होती है।

फल—सिरपुर (श्रीपुर) नगर के पुखराज कृषक ने इस स्तोत्र के ३३ वें काव्य सहित उक्त मंत्र की साधना द्वारा उसके प्रभाव से सम्भावित दुर्भिक्ष को रोका था।

श्लोक ३४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उंजि अस्सायतवखणाणं ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं नमो भगवति (ते?) भूतपिशाचराक्षसवेतालान् ताडय ताडय, मारय मारय स्वाहा ॥

गुण—भूत, पिशाच, राक्षस, शाकिनी और डाकिनी की पीड़ा तथा शत्रुभय का विनाश होता है।

फल—गोदावरी नदी के किनारे पैठनपुर नगर के प्रताप-कुंवर को पिशाच द्वारा सताये जाने पर श्रुतधी नाम के वणिक पुत्र ने इस स्तोत्र के ३५वें काव्य सहित इस मंत्र की जाप जप कर तथा इसी मंत्र से मन्त्रित जल को पिला कर पिशाच की बाधा दूर की थी।
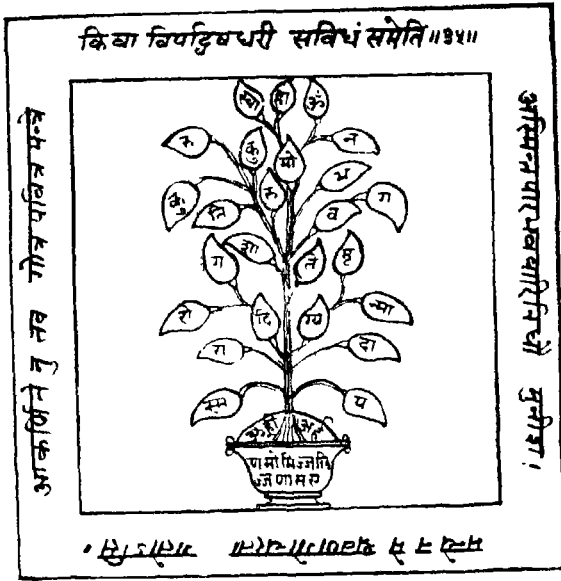
श्लोक ३५—

ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो मिज्जलिज्जणासए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवति (ते?) मिगियागदे अपस्मारे (मृग्युन्मदापस्मरादि?) रोगे (ग?) शांति कुरु कुरु स्वाहा ॥

गुण—मृगी, उन्माद, अपस्मार और पागलपन आदि असाध्यरोग शान्त होते हैं।

फल—पाटिलपुत्र नगर के रुद्रदत्त बणिक ने इस स्तोत्र के ३५ वें श्लोक सहित उक्त मंत्र की साधना से अनेकों का मृगीरोग को दूर किया था।

श्लोक ३६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो षा (षो?) हुं फट् विचक्राए ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं अष्टमहानागकुलविषशांतिकारिणि (ण्यै ?) नमः स्वाहा ॥

गुण—इस महामंत्र के प्रभाव से काला नाग पकड़े तो काटे नहीं और इसी मंत्र से कंकड़ों को मंत्रित कर सर्प के ऊपर फैंके तो वह कीलित हो जाता है तथा उसका विष असर नहीं करता है।

फल—मिथिलापुरी नगरी के मनबी नाम के धोबी ने दिगम्बर मुनि द्वारा प्रदत्त इस स्तोत्र के ३६ वें श्लोक सहित उक्त मंत्र के आराधन से बड़े बड़े विषधरों को वश में किया था।

श्लोक ३७—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खो (खो?) भि ह्रीं खोभिए ॥

मंत्र—ॐ नमो (×) भगवति (ते ?) सर्वराजाप्रजावश्य (श?) कारिणि (णे ?) नमः स्वाहा ॥

गुण—यन्त्र को पास में रख कर उक्त मंत्र से ७ कंकरों को मंत्रित कर क्षीरवृक्ष के नीचे उन्हें ऊपर उछाल कर अधर झेले पश्चात् नगर के चौराहे पर डालने से राजा से मिलाप होता है, श्रेष्ठ पुरुषों से सन्मान प्राप्त होता है।

फल—जालन्धर नगर के मानोमल सज्जन ने इस मंत्र का आराधन कर श्रेष्ठ पुरुषों से सन्मान पाया था और राजा से मिलाप हुआ था।

श्लोक ३८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो इट्ठि (ट्टि ?) मिट्ठि (ट्टि ?) मरकं (भक्खं?) कराए ॥

मंत्र-ॐ जानवा (जनेवा) न्हारवापहारिण्यै भगवत्यै खड्गा-रीदेव्यै नमः स्वाहा ॥

गुण—नहरुवा, जनेवा, उदर तथा हृदय की पीड़ा नष्ट होती है । होली की राख को उक्त मंत्र से २१ वार मंत्रित कर रोग दूर न होने तक प्रतिदिन उससे झाड़े ।

फल—काञ्चीपुर नगर के शिवशर्मा ब्राह्मण ने मुनिप्रदत्त इस मंत्र की साधना द्वारा उक्त रोगों से पीड़ित मनुष्यों की पीड़ा दूर की थी ।

श्लोक ३९—
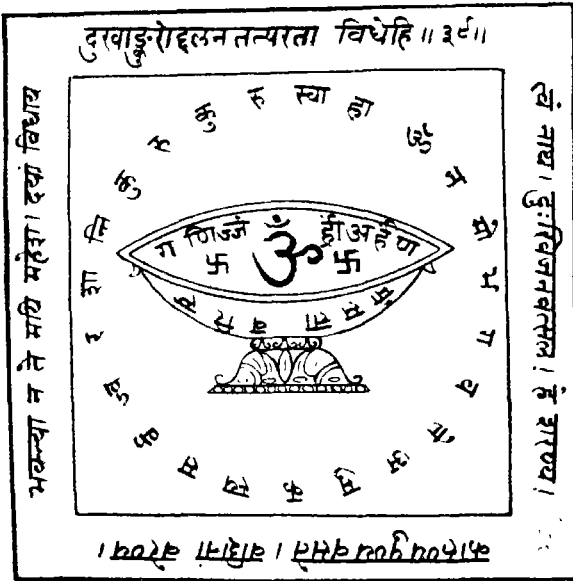
ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो सता (त्ता?) वरिएगु (ग?) णिज्जं ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते (अमुकस्य) सर्वज्वरशांति कुरु कुरु स्वाहा ॥

गुण—सर्वज्वर तथा सन्निपात दूर होता है। भूर्जपत्र पर यंत्र लिख कर रोगी के कंठ में धूप देकर बांध देवे।

फल—पद्मखण्ड नाम की नगरी में इन्द्रप्रभ ने इस स्तोत्र के ३९ वें श्लोक सहित इस मंत्र को सिद्ध करके इसके प्रभाव से अनेकों ज्वरपीड़ित मनुष्यों की पीड़ा दूर की थी।
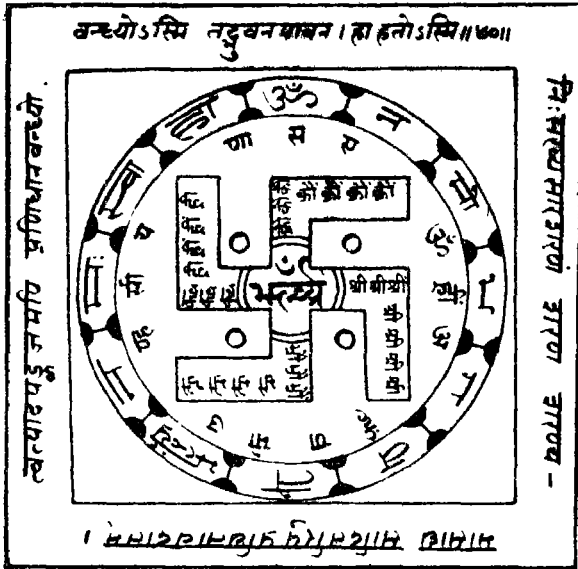
श्लोक ४०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उन्ह (एह ?) सीअ (य ?) णासए ॥

मंत्र— ॐ नमो भगवते भ्ल्व्र्यूं नमः स्वाहा ॥

गुण—इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि विषम ज्वर दूर होते हैं।

फल—सौरीपुर नगर के चन्द्रशेखर महाशय ने इस ४० वें काव्य सहित इस मंत्र की आराधना के प्रभाव से विषम ज्वरपीड़ित मनुष्यों का कष्ट मिटाया था।
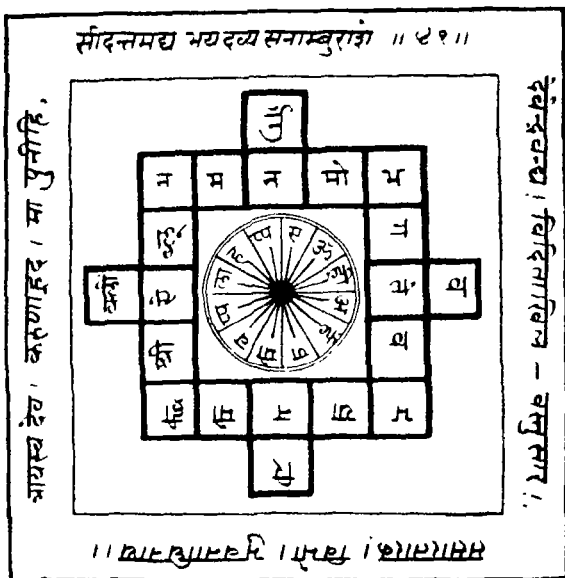
श्लोक ४१—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वप्पला हृव्व (प्प ?) ए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते वंभयारि नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐंब्लूँ नमः (स्वाहा) ॥

गुण—संग्राम में तीर, तलवार, बरछा, भाला तथा अन्य अस्त्र शस्त्र साधक को घायल नहीं कर पाते।

फल—उत्तर मथुरा के राजा श्रीदर्शन ने इस स्तोत्र के ४१ वें काव्य सहित मंत्र की आराधना से संग्राम में शत्रु राजाओं के अस्त्र-शस्त्रों को कुँठित कर अपनी वा अपने सेवकों की रक्षा की थी!

श्लोक ४२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो इत्थि वत्थ (रत्त?) (रोम) णासए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते स्त्रीप्रसूतरोगादिशान्ति कुरु कुरु स्वाहा ॥

गुण—स्त्रियों का प्रदररोग दूर होता है, बहता हुआ रुधिर रुक जाता है तथा गर्भ का स्तम्भन होता है।

फल—उक्त मंत्र की साधना द्वारा धनदत्त श्रेष्ठी की पुत्री मदनसेना ने अपने प्रदरादि रोगों को दूर कर नवजीवन प्राप्त किया था।

श्लोक ४३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो बंदि मोक्ख (अ?) या (णा?) ए ॥

मंत्र—ॐ नमो सिद्धि (द्ध?) महासिद्धि (द्ध ?) जगत् सिद्धि (द्ध ?) त्रैलोक्यसिद्धि (द्ध ?) (सहिताय कारागारबन्धनं) मम रोगं छिन्द छिन्द, स्तम्भय स्तम्भय, जृंभय जृंभय, मनोवाञ्छित (तं ?) सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ॥

गुण—बन्दी बन्धनमुक्त हो जाता है, रोग शान्त होते हैं तथा इष्टकार्यों की सिद्धि होती है।

फल—अलकापुरी के चन्द्रप्रभ मंत्री ने इस काव्य वा मंत्र के प्रभाव से अपने को बन्धनमुक्त किया था।

श्लोक ४४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः ॥

मंत्र—ॐ नमो धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमः (स्वाहा) ॥

गुण—लक्ष्मी की प्राप्ति और व्यापार में लाभ होता है।

फल—तिलकपुर नगरी के मिथ्यात्वी अमरदत्त वैश्य ने इस स्तोत्र के ४४ वें काव्य सहित इस मंत्र की आराधना के प्रभाव से विपुल सम्पत्ति प्राप्त की थी।

कल्याणमन्दिर मंत्रसाधन की विधि—

श्लोक १,२—लाल रेशमी वस्त्र पहिन कर, लाल रेशम की माला लेकर, पर्वत के ऊपर पूर्व की ओर मुख करके, लाल आसन पर बैठ कर ६० दिन तक प्रतिदिन १००८ वार श्रद्धा सहित ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कपूर, कस्तूरी, चन्दन और शिलारस मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥ १,२ ॥

श्लोक ३—लाल मूँगा की माला लेकर, एकान्त स्थान में पश्चिम की ओर मुख करके, सफेद आसन पर बैठकर श्रद्धापूर्वक २७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, चन्दन, छाड़-छबीला और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। यंत्र पास रखे ॥ ३ ॥

श्लोक ४—कमलगटा की माला लेकर, एकान्तस्थान में पूर्व की ओर मुख करके, पीले रंग के आसन पर बैठ कर स्थिरचित्त रविवार के दिन प्रातःकाल १००० वार ऋद्धि-मंत्र का होकर जाप जपे और निर्धूम अग्नि में गूगल, चन्दन, कपूर और घृत मिश्रित धूप खेवे।

इस विधि में ६ वर्ष तक प्रतिवर्ष रविवार व्रत करे तथा प्रतिवर्ष लगातार ४० रविवार के दिनों में उक्त ऋद्धि-मंत्र की जाप जपे। एकाशन, भूमिशयन तथा ब्रह्मचर्य से रहे ॥ ४ ॥

श्लोक ५—स्फटिकमणि की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, एकान्त स्थान में सफेद आसन पर पद्मासन से बैठ कर श्रद्धापूर्वक ४६ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-

मंत्र को जपे तथा निधूम अग्नि में गूगल, कुंदरू, कपूर, चन्दन और इलायची मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥ ५ ॥

श्लोक ६—पद्मबीज की माला लेकर, दक्षिण की ओर मुख करके, निर्जन स्थान में हरे रंग के आसन पर बैठ-कर, श्रद्धापूर्वक ४० दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निधूम अग्नि में गिरी, गूगल, लवंग और चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥ ६ ॥

श्लोक ७—लाल मूँगा की माला लेकर, नैऋत्य की ओर मुख करके, रात्रि के समय एकान्त स्थान में जोगिया रंग के आसन पर बैठ कर, एकाग्रचित्त से २७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा धूमरहित अग्नि में गूगल, लोभान, चन्दन और प्रियंगुलता मिश्रित धूप खेवे ॥ ७ ॥

श्लोक ८—चांदी की माला लेकर, ईशान की ओर मुख करके, कोलाहलरहित स्थान में डाभ के आसन पर बैठ कर स्थिरचित होकर १४ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे और निधूम अग्नि में गूगल, कुन्दरू और सफेद चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥ ८ ॥

श्लोक ६—रुद्राक्ष की माला लेकर, आग्नेय की ओर मुख करके एकान्त निर्जन स्थान में काले ऊन की आसन पर पद्मासन से बैठ कर पूर्ण विश्वास सहित १४ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा शिखारहित निधूम अग्नि में गूगल, राहर और कुंदरू मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥ ६ ॥

श्लोक १०—सोने की माला लेकर, वायव्य की ओर मुख करके, पीले रंग के आसन पर बैठ कर १८ दिन तक प्रतिदिन श्रद्धासहित १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा गूगल और चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥ १० ॥

श्लोक ११—सफेद चन्दन की माला लेकर, ईशान की ओर मुख करके, सफेद आसन पर बैठ कर १६ दिन तक प्रतिदिन स्थिरभाव से १००० बार ऋद्धि-मन्त्र का जाप जपे तथा चन्दन, नागरमोथा, कपूरकचरी और घृत मिश्रित धूप खेवे ॥११॥

श्लोक १२—स्फटिकमणि की माला लेकर; नैऋत्य की ओर मुख करके; सफेद आसन पर बैठ कर ७ दिन तक प्रतिदिन एकाग्रचित्त से १०८ बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गिरी, कपूर, गूगल और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। ॥१२॥

श्लोक १३—जायफल की माला लेकर, पश्चिम की ओर मुख करके, लालरंग के आसन पर बैठकर भावसहित २७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, चन्दन और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१३॥

श्लोक १४—रीठा की माला लेकर, दक्षिण की ओर मुख करके, काले रंग के आसन पर बैठ कर निश्चिन्त मन से मूल नक्षत्र से हस्त नक्षत्र पर्यन्त २५ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, लाल-मिर्च, गिरी, और नमक मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१४॥

श्लोक १५—लाल सूत की माला लेकर, उत्तर की ओर मुख करके, हरे रंग के आसन पर बैठ कर १४ दिन तक प्रतिदिन निश्चल मन से ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कुन्दरू और गूगल मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१५॥

श्लोक १६—स्फटिकमणि की माला लेकर, वायव्य की ओर मुख करके, सफेद आसन पर बैठकर ७ दिन तक प्रतिदिन

१००० बार ऋद्धि-मंत्र का जप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल मेवा (खोवा) चन्दन और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१६॥

श्लोक १७—स्फटिकमणि की माला लेकर, नैऋत्य की ओर मुख करके, सफेद आसन पर बैठ कर श्रद्धासहित १४ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे और निर्धूम अग्नि में चन्दन, कपूर, इलायची तथा घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। यंत्र पास रखे ॥१७॥

श्लोक १८—चन्दन की माला लेकर, आग्नेय की ओर मुख करके, काले रंग के आसन पर बैठ कर सुदृढ़ मन से ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल और कुंदरू मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१८॥

श्लोक १९—चन्दन की माला लेकर, नैऋत्य की ओर मुख करके हरे रंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धासहित ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा प्रज्वलित निर्धूम अग्नि में चन्दन, अगर और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१९॥

श्लोक २०—रुद्राक्ष की माला लेकर, ईशान की ओर मुख करके एकान्त निर्जन स्थान जोगिया (भगवां) रंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक ४९ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल और राहर मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥२०॥

श्लोक २१—तुलसी की माला लेकर, वायव्य की ओर मुख करके, डाभ के आसन पर बैठ कर श्रद्धासहित १४ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, छाड़ छबीला और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥२१॥

श्लोक २२—तुलसी की माला लेकर, नैऋत्य की ओर मुख

करके, एकान्त स्थान में डाभ के आसन पर बैठ कर श्रद्धासहित २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा गूगल, छाड़ छबीला और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। इस विधि में भूमिशयन तथा एकाशन अवश्य करे ॥२२॥

श्लोक २३—लाल रेशम की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, एकान्त स्थान में लाल रंग के आसन पर बैठ कर विश्वासपूर्वक २७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मन्त्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में चन्दन, कस्तूरी और शिला-रस मिश्रित धूप क्षेपण करे। सोने या चांदी के पत्र पर यन्त्र खुदवाकर पास रखे ॥२३॥

श्लोक २४—लाल रंग की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, लाल रंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक २७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कपूर, कस्तूरी, शिलारस और सफेद चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे।

मंत्रसाधना के अन्तिम दिन हवन करने के उपरान्त श्रावकों की २५ कुँवारी कन्याओं को मोहनभोग तथा हलुवा का भोजन करावे। यंत्र को भुजा में बांध कर मंत्र की साधना एकान्त स्थान में करे ॥२४॥

श्लोक २५—स्फटिकमणि की माला लेकर, पश्चिम की ओर मुख करके, सफेद रंग के आसन पर बैठ कर स्थिर चित्त से २१ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मन्त्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कपूर, चन्दन, इलायची और कस्तूरी मिश्रित धूप क्षेपण करे।

श्लोक २६—भोजपत्र पर अष्टगंध से यंत्र लिखकर गले में बांधे और होली तथा दिवाली की रात में मंत्र को जगावे ॥२५॥

श्रीपार्श्वनाथाय नमः

श्रीमद्देवेन्द्रकीर्तिप्रणीता

कल्याणमन्दिरस्तोत्रपूजा

पूर्व–पीठिका

श्रीमद्गीर्वाणसेव्यं प्रबलतरमहा–मोहमल्लातिमल्लं ।
कान्तं कल्याणनाथं, कठिनशठमनो-जातमत्तेभसिंहं ॥
नत्वा श्रीपार्श्वदेवं, कुमुदविधुकृतो, रम्यकल्याणधाम्नः ।
स्तोत्रस्योच्चै विशालं, विधिवदनुपमं, पूजनं कथ्यतेऽत्र ॥

पंचवर्णेन चूर्णेन, कर्त्तव्यं कमलं वरं ।
वेदवार्धिकरं वेद्यां, कर्णिकामध्यगं बुधैः ॥
धौतवस्त्रधरः प्राज्ञः, श्लेष्मादिव्याधिवर्जितः ।
बाह्याभ्यन्तर–संशुद्धो, जिनपूजा–विधानवित् ॥
गुरोराज्ञांविधायोच्चैः, शिरस्या—दरतस्ततः ।
पृष्ट्वा सङ्घपतिं पूजा प्रारम्भः क्रियतेऽञ्जसा ॥
आदौ गन्धकुटीपूजां, विधायामल - वस्तुभिः ।
पञ्चानामर्हदादीनां , ततोऽर्चां परमेष्ठिनाम् ॥

ततो गत्वा गुरोरग्रे, भारती-मुनि-पूजनं ।
कृत्वेलाशुद्धिकार्यं च, क्रमेणागमकोविदैः ॥
ततोऽम्लानां च सामग्रीं, कृत्वा सद्गीः बुधोत्तमः ।
पूजनं पार्श्वनाथस्य, कुर्यान्मंत्र—पुरस्सरम् ॥

एतत्पद्यसप्तकं पठित्वा स्वस्तिकस्योपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

श्रीपार्श्वनाथस्तवन

(सोरठा छन्द)

पारस प्रभु को नाउ, सार सुधासम जगत में ।
मैं वाकी बलि जाँउ, अजर अमर पद मूल यह ॥

हरिगीता छन्द (२८ मात्रा)

राजत उतंग अशोक तरुवर, पवन प्रेरित थर—हरै ।
प्रभु निकट पाय प्रमोदनाटक, करत मानो मन हरै ॥
तस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी ।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥

निज मरन देखि अनंग डरप्यो, सरन ढूंढ़त जग फिर्यो ।
कोई न राखै चोर प्रभु को, आय पुनि पायन गिर्यो ॥
यों हार, निज हथियार डारे, पुष्पवर्षा मिस भनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥

प्रभु अंग नील उतंगगिरि तैं, वानि शुचि सरिता ढली ।
सो भेदि भ्रम गजदंत पर्वत, ज्ञान-सागर में रली ॥

नय–सप्त–भंग–तरंग–मण्डित, पाप – ताप — विनाशिनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥

चन्द्रार्चिचय-छवि-चारु चंचल, चमर वृन्द सुहावने ।
ढोलैं निरन्तर यक्षनायक, कहत क्यों उपमा बने ॥
यह नीलगिरि के शिखर मानो, मेघ झरि लागी घनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥

हीरा जवाहर खचित बहुविधि, हेम आसन राजये ।
तहँ जगत जनमनहरन प्रभुतन, नील वरन विराजये ॥
यह जटिल वारिज मध्य मानो, नीलमणि कणिका बनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥

जगजीत मोह महान जोधा, जगत मैं पटहा दियो ।
सो शुक्ल-ध्यान-कृपानबलजिन, विकट बैरी वश कियो ॥
ये बजत विजय महान्दुन्दुभि, जीत सूचै प्रभु तनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥

छदमस्थ पद में प्रथम दर्शन, ज्ञान चारित आदरे ।
अब तीन तेई छत्र छल सों, करत छाया छवि भरे ॥
अतिधवल रूप अनूप उन्नत, सोमबिम्ब प्रभा हनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥

द्युति देखि जाकी चन्द्र लाजे, तेज सौं रवि लाजई ।
तव प्रभा-मण्डल जोग जग में, कौन उपमा छाजई ॥
इत्यादि अतुल विभूतिमंडित, सोहये त्रिभुवन धनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥

या अगम महिमा सिन्धु चक्री, शक्र पार न पावहीं ।
तजि हास भय तुम दास "मथुरा" भक्तिवश यश गावहीं ॥

अब होहु भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं।
कर जोरि यह वरदान मांगौं, मोक्षपद जावत लहौं॥

स्थापना

प्राणतस्वः समायातं, फणिलाञ्छन—संयुतं।
वामामातृसुतं पार्श्वं, यजेऽहं तद्गुणाप्तये॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र देव! मम हृदये अवतर अवतर संवौषट्। इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रदेव! मम हृदये तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्रदेव! मम हृदयसमीपे सन्निहितो भव भव वषट्। इति सन्निधिकरणम्। परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामः।

अथाष्टकम्

वियद्गङ्गासिन्धु - प्रमुखशुचितीर्थाम्बुनिवहैः।
शरच्चन्द्राभासैः, कनकमय—भृङ्गार—निहितैः॥
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनरखगाधीशमहितं।
चिदानन्दप्राज्ञं, कमठ - रचितोपद्रव - जितम्॥

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय जलम्।

स्फुरद्गन्धाहूत-प्रचुर-फणिसंरुद्ध — तरुजैः।
रसैः कर्पूरास्यै र्निविडभवसन्तापहरणैः॥यजे०॥

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय चन्दनम्।

अखण्डैः शालीयै-रपगत-तुषै-रक्षतमयैः ।
प्रपुञ्जैरानन्द - प्रदायजनकै नैत्रमनसाम् ॥
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनरखगाधीशमहितं ।
चिदानन्दप्राज्ञं, कमठ - रचितोपद्रव - जितम् ॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय अक्षतम् ।

मरुद्दारूद्भूतै - विंकचसरसी - जातबकुलैः ।
लवङ्गै रामोद - भ्रमरमिलितैः पुष्पनिचयैः ॥यजे०॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय पुष्पम् ।

सदन्नै रापूर्ण - प्रवरघृतपक्वान्नसहितैः ।
रसाढ्यै नैवेद्यै - स्तुलकाञ्चनपात्रविधृतैः ॥यजे०॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय नैवेद्यम् ।

हविर्जातैः रम्यै - र्विदलितदिशाकीर्णतमसैः ।
प्रदीप्तै र्माणिक्यै विंशदकलधौतार्चिरमलैः ॥यजे०॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय दीपम् ।

सुकर्पूरोत्पन्नै - रमरतरु - सच्चन्दनभवैः ।
सुधूपौघैः श्लाघ्यै - र्मिलदलिगणागुञ्जितरवैः ॥यजे०॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय धूपम् ।

सुपक्वै र्नारङ्ग - क्रमुकशुचिकूष्माण्डकरकैः ।
फलै र्मोचाम्राद्यै र्विबुधशिवसम्पद्वितरणैः ॥ यजे०॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय फलम् ।

जलै गन्धद्रव्यै र्विशदसदकैः पुष्पचरुकैः ।
सुदीपैः सद्धूपै र्बहुफलयुतैरर्घनिकरैः ॥
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनरखगाधीशमहितं ।
चिदानन्दप्राज्ञं, कमठ - रचितोपद्रव - जितम् ॥

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

अथ जयमाला

शताब्दजीवी समशत्रुमित्रो, हरित्प्रभाङ्गो हतमारदपः ।
सपादचापद्वयतुङ्गकायो, यस्तं सदा पार्श्वजिनं नमामि ॥

निराभूषशोभं, परिध्वस्तलोभं,
चिदानन्दरूपं, नतानेकभूपं ।
स्तुवे पार्श्वदेवं, भवाम्भोधिनावं,
त्रिषड्दोषहीनं, जगत्पूज्यमानं ॥

शिवं सिद्धकायं, वरानन्ततुयं,
रमानाथमीशं, जितानङ्गपाशं ॥ स्तुवे० ॥

शतेन्द्रार्च्यपादं, स्फुरद्दिव्यनादं,
गणाधीशमाद्यं,लसद्देववाद्यं ॥ स्तुवे० ॥

हरं विश्वनेत्रं, त्रिछत्रातपत्रं,
क्षुधावह्निनीरं, द्विधासङ्गदूरं ॥ स्तुवे० ॥

दिशाचेलवन्तं, वरं मुक्तिकान्तं,
निरस्तारिमोहं,पुरं सौख्यगेहं ॥
स्तुवे पार्श्वदेवं, भवाम्भोधिनावं,
त्रिषड् दोषहीनं, जगत्पूज्यमानं ॥
जराजन्ममुक्तं, वरानन्दयुक्तं,
हतक्रोधमानं, कृतज्ञानदानं ॥ स्तुवे० ॥
अविद्यापहारं, सुविद्यागभीरं,
स्वयंदीप्तिमूर्तिं, जगत्प्राप्तकीर्तिं ॥ स्तुवे० ॥
यतिवरवृषचन्द्रं, चित्कलापूर्णचन्द्रं ।
विमलगुणसमृद्धं, नम्रनागामरेन्द्रम् ॥
जिनपतिमहिधारं, दुःखसन्तापहारं ।
भजति नमति सारं, सौख्यसारं लभेत ॥

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय जयमालार्घ्यम् ।

सर्वजीवदयायुक्तः, सर्वलौकन्तिकार्चितः ।
पार्श्वदेवः श्रियं दद्यात्, नित्यं पूजाविधायिनाम् ॥

इत्याशीर्वादः ॥

अथाष्टदलकमल पूजा

कल्याण-मन्दिरमुदार-मवद्यभेदि—

भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम् ।

संसारसागर-निमज्ज-दशेषजन्तु—

पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥

सन्मङ्गलालयमुदासिकलङ्कहारि,

संसारभीतमनसामभयप्रदायि ।

जन्माब्धिमध्यग असुमत्तरि यत्पदाब्जं,

तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१॥

ॐ ह्रीं भवसमुद्रपतज्जन्तुतारणाय क्लींमहाबीजाक्षर सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

यस्य स्वयं सुरगुरु र्गरिमाम्बुराशेः,

स्तोत्रं सुविस्तृतमति र्न विभु र्विधातुम् ।

तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतो—

स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥

वाचस्पति र्न गुरुवारिनिधेः समर्थः,

कर्तुं धिया स्तवमनन्तगुणस्य यस्य ।

तीर्थाधिपस्य कमठोद्धतगर्वहर्तुः,

तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप—
　　मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिकशिशु र्यदि वा दिवान्धो,
　　रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥
संक्षेपतोऽपि भुवि विस्तरितुं महत्त्वं,
　　दक्षा भवन्ति न हि तुच्छधियो यदीयं ।
घूका जडा दिनकरस्य यथा स्वरूपं,
　　तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३॥

ॐ ह्रीं चिद्रूपाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
　　नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मा—
　　न्मीयेत केन जलधे र्ननु रत्नराशिः ॥
निर्मोह ! कोऽपि मनुजो गुणसंहते र्नो,
　　संख्यां करोति गहनार्थपदस्य यस्य ।
रत्नस्य वा प्रलयवायुहतस्य वार्धे—
　　स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥४॥

ॐ ह्रीं गहनगुणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥
इच्छन्ति मन्दमतयः स्तवनं विधातुं,
यस्य प्रकृष्टगुणिनः शिशवो यथात्र ।
विस्तार्य बाहुयुगलं जलधेः प्रमाणं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥५॥

ॐ ह्रीं परमोन्नतगुणाय क्रौंमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ।
जाता तदेवमसमीक्षितकारितेयं,
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥
गम्या गुणा यदि महद्वपुषां न यस्य,
तत्रावकाश इह तुच्छधियां कथं स्यात् ।
गायन्ति पक्षिण इवात्र जनास्तथापि,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥६॥

ॐ ह्रीं अगम्यगुणाय क्रौंमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन ! संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहतपान्थजनान्निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥
स्तुत्या भवन्ति मनुजाः सुखिनोऽत्र किं न,
नाम्नैव यस्य मरुता नलिनाकरस्य ।
सूर्यातपार्तपथिकाः शिशिरं यथा नु,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥७॥

ॐ ह्रीं स्तवनार्हाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गमया इव मध्यमाग—
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥
यस्मिन्स्थिते हृदि विनाशमुपैति बन्धः,
पापस्य शुद्धमनसो भविनो मयूरे ।
संरुद्धचन्दननगो ऽहिरिवात्र याते,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥८॥

ॐ ह्रीं कर्मबन्धविनाशकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

अथ षोडशदलकमलपूजा

क्षुभ्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र—
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥
दृष्टे पलायनपराः किल भूतवर्गा,
यस्मिन् विमुच्य मनुजानिह संग्रहीतान् ।
दोषाचराः पशुपताविव गोसमाजं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥९॥

ॐ ह्रीं दुष्टापवर्गविनाशकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून—
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥
संसारिणां भवति यो हृदि संस्थितोऽपि,
सन्तारकः किल निरन्तरचिन्तकानां ।
भस्त्रागतो मरुदिवाम्बुनिधौ समर्थ—
स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१०॥

ॐ ह्रीं सुध्येयाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपि　　हतप्रभावाः,

सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितःक्षणेन ।

विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,

पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ॥

येनाहतं हरिहरादि — महत्त्वमुच्चैः,

सोऽनन्तको जिनवरेण हतो हि येन ।

वारांनिधेरिव　जलं　बडवानलेन,

तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥११॥

ॐ ह्रीं अनङ्गमथनाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि　प्रपन्ना—

स्त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ।

जन्मोदधिं　लघु　तरन्त्यतिलाघवेन,

चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥

यं वाहका हृदि जनाः कथमुत्तरन्ति,

संसारवारिधिमहो गुरुमप्यतुल्यम् ।

चिन्त्यो न जातु महतां महिमात्र लोके,

तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१२॥

ॐ ह्रीं अतिशयगुरवे क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्री पार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

क्रोधस्त्वया यदि विभो ! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तस्तदा वद कथं किल कर्मचौराः ।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नीलद्रुमाणि विपनानि न किं हिमानी ॥
जित्वा क्रुधं पुनरलं शठमोहदस्यु—
र्येन प्रणाशित उदारगुणेन चित्रं ।
सौम्येन कर्दमजमत्र हि मेनवाश्रु
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१३॥

ॐ ह्रीं जितक्रोधाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप—
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोषदेशे ।
पूतस्य निर्मलरुचे र्यदि वा किमन्य—
दक्षस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥
यं साधवो हृदयतामरसे विकाशे,
ध्यायन्ति शुद्धमनसो यत ईड्यमानं ।
चित्तादतेन हि पदं वपुषीह पूतं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ।१४॥

ॐ ह्रीं महन्मृग्याय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥
यस्येह मानव उपैति पदं गरिष्ठं,
सद्ध्यानतो झटिति संहननं विसृज्य ।
हैमं यथानलवशाद्विदृषद्विशेषं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१५॥

ॐ ह्रीं कर्मकिट्टदहनाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

अन्तः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि,
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥
योऽन्तर्गतोऽपि भविनो वपुरत्र वेगा—
न्निर्नाशयत्यखिलदुःखमयं विचित्रं ।
माध्यास्थिकः कलिमिवाशु महत्तरः स्वं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१६॥

ॐ ह्रीं देहदेहिकलहनिवारकाय क्लींमहाबीजाक्षर-
सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्धया,
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं,
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥
विद्वद्भिरत्र यदभिन्नधियायमात्मा,
सञ्चिन्तितं फलति मुक्तिपदं हि सद्यः ।
मान्यं श्रयेति सलिलं विषनाशकं वा,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१७॥

ॐ ह्रीं संसारविषसुधोपमाय क्लींमहाबीजाक्षर-
सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो ! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः ।
किं काचकामलिभिरीश ! सितोऽपि शङ्खो,
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥
ये ध्वस्तमोहतिमिरं कुपथप्रलग्नाः,
कृष्णादिबुद्धिमनुदारमुपाश्रयन्ति ।
नेत्रामया इव यथार्थ-विवेकहीना,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१८॥

ॐ ह्रीं सर्वजनवन्द्याय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

धर्मोपदेशसमये सुविधानुभावा—
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि,
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥
सद्धर्मजल्पनविधौ वसुधारुहोऽपि,
शोकातिरिक्त इह यस्य किमन्यवृत्तं ।
भानूदये सति यथा किल वारिजातं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१९॥

ॐ ह्रीं अशोकवृक्षविराजमानाय क्लींमहाबीजाक्षर-
सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव,
विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !,
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥
रेजे सुरप्रसव - संततिवृष्टि - रुद्धा,
स्वामोदवासितदिशावलया यदीया ।
यत्पादमाश्रितजना भृशमूर्ध्वगाः स्यु—
स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२०॥

ॐ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टिशोभिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परमसम्मदसङ्गभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥

गम्भीरहृज्जलधिजातवचो हि यस्य,
प्रीणाति चारु जनताममृतोपमं तत् ।
निःस्वाद्य गच्छति जनः किल मोक्षधाम,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२१॥

ॐ ह्रीं दिव्यध्वनिविराजिताय क्लींमहाबीजाक्षर
सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥

यस्य प्रकीर्णकयुगं वदतीव लोकान्,
दुग्धाब्धिफेनधवलं सुरवीज्यमानं ।
वन्दारुरुग्रगतिरेव जिनं सदेति,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२२॥

ॐ ह्रीं सुरचामरविराजमानाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न—
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चै—
श्चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥
सद्धेमरत्नमयकेशरि – विष्टरस्थं,
यं भव्यकेकिन अभीक्ष्य नटन्त्यजस्रं ।
जाम्बूनदाचलशिखाघनमन्यमाना—
स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२३॥

ॐ ह्रीं पीठत्रयनायकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरु र्बभूव ।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग !
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥
श्यामप्रभावलयतोऽतिविचित्रकान्तिः,
रेजे ह्यशोकतरुरुच्चतमो ऽपि यस्य ।
संसर्गतो भवति रागयुतो न कोऽत्र,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२४॥

ॐ ह्रीं भामण्डलमण्डिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

अथ विंशतिदलकमल पूजा

भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन—
माग त्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥
गीर्वाणदुन्दुभिरतीव वदत्यजस्र—,
मेनं निसेव्य जिनं प्रविहाय मोहं ।
यस्य त्रिविष्टपजनाय नदन्नभीक्ष्णं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशार्घैः ॥२५॥

ॐ ह्रीं देवदुन्दुभिनादाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ !
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ।
मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्र—
व्याजात्त्रिधा धृततनु र्ध्रुवमभ्युपेतः ॥
येन प्रकाशित इहेत्य कृतत्रिरूपो,
लोकत्रयीधवलछत्रमिषेण चन्द्रः ।
मोहग्रहः किमिव यस्य करोति सेवां,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशार्घैः ॥२६॥

ॐ ह्रीं छत्रत्रयसहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

स्वेन प्रपूरित जगत्त्रयपिण्डितेन,
कान्तिप्रतापयशसामिव सञ्चयेन ।
माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन,
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥
यः शोभते मणिसुवर्णसुरौप्यजेन,
तेजः प्रभाव-शुचिकीर्तिसमुच्चयेन ।
शालत्रयेण दिवि चामरनिर्मितेन,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२७॥

ॐ ह्रीं शालत्रयाधिपतये क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

दिव्यस्रजो जिन ! नमत्त्रिदशाधिपाना-
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र,
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥
माल्यं सुभक्तिभरनम्रसुराधिपानां,
सन्त्यज्य चारुमुकुटं पदमाश्रितं हि ।
यस्यानिशं सुमनसां महदेव सेव्यं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२८॥

ॐ ह्रीं भक्तजनावनतपराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्वं नाथ ! जन्मजलधे र्विपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयत्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान् ।
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो ! यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥
यस्तारयत्यतनुरङ्गभृतो विचित्रं,
संसारवार्धिविमुखोऽपि सुभक्तियुक्तान् ।
यन्मृत्तिकामय इवात्र घटोऽम्बुराशौ,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२९॥

ॐ ह्रीं निजपृष्ठलग्नभयतारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक ! दुर्गतस्त्वं,
किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश !
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकाशहेतु ॥
यः सर्वलोकजनताधिपति र्दरिद्रो,
व्यक्ताक्षरोऽप्यलिपिरित्युदितो महद्भिः ।
ज्ञानी किलाज्ञ इति विस्मयनीयमूर्तिः,
तं पार्श्वनाथनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३०॥

ॐ ह्रीं विस्मयनीयमूर्तये क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषा—
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥
या लोकमूर्द्ध वितता हि खलेन कोपा—
दुत्थापिता कमठपूर्वचरेण धूलिः ।
आच्छादिता तनुरहो न तयापि यस्य,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३१॥

ॐ ह्रीं कमठोत्थापितधूल्युपद्रवजिताय क्लींमहाबीजाक्षर सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

यद्गर्जदूर्जित -- घनौघ -- मदभ्रभीमं,
भ्रश्यत्तडिन्मुसल - मांसल - घोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ॥
नीरं विमुक्तमसुरेण सवज्रपातं,
वर्षाभवं घनतरं यदुपद्रवाय ।
तस्यासुरस्य वत दुःखदमेव जातं,
तं पार्श्वनाथमनर्घं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३२॥

ॐ ह्रीं कमठकृतजलधारोपसर्गनिवारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृति—मर्त्यमुण्ड,
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्र — विनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥
पैशाचिको गण उपद्रव—भूरियुक्तो,
दैत्येन यं प्रतिनियोजित उद्धतेन ।
तद्दैत्यकस्य पुनरुग्र - भयप्रदोऽभूत्,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३३॥

ॐ ह्रीं कमठकृतपैशाचिकोपद्रवजयनशीलाय क्लींमहा
बीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य—
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः ।
भक्त्योल्लसत्पुलक - पक्ष्मलदेहदेशाः,
पादद्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ।
पादारविन्दयुगलं प्रणमन्ति भक्त्या,
यस्य प्रशान्तमनसः किल धर्मवन्तः ।
सद्भक्तयः परिहृताखिल-गेह-कार्या—
स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३४॥

ॐ ह्रीं धार्मिकवन्दिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥
यन्नाम नैव श्रुतमत्र जनेन येन,
स प्रायशो हि भववारिनिधौ निमग्नः ।
श्रुत्वा गतः शिवपुरं बहवस्त्रिशुद्ध्या,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३५॥

ॐ ह्रीं पवित्रनामधेयाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव !
मन्ये मया महितमीहितदानदक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवानां,
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥
यत्पादपङ्कजमलं न हि येन पूतं,
संपूजितं जगति संसरणान्तरेऽपि ।
दुःखाशिनां भवति सोऽग्रचरः सदैव,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३६॥

ॐ ह्रीं पूतपादाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ॥
मोहान्धकारपटलावृतचक्षुषा यो,
नैवेक्षितो भुवि जवञ्जवकूपगेन ।
येनात्र तस्य मनुजत्वमलं निरर्थं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३७॥

ॐ ह्रीं दर्शनीयाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रं,
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥
किं वा श्रुतोऽपि यदि येन सुपूजितोऽपि,
किं वीक्षितोऽपि हृद्भक्तिभराद्धृतो न ।
यस्तस्य नैव फलदः खलु हीनभक्ते—
स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यः ॥३८॥

ॐ ह्रीं भक्तिहीनजनमाध्यस्थाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्य - पुण्यवसते वशिनां वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय,
दुखाङ्कुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥

वात्सल्यवान् जननदुःख - कदर्थितेषु,
यः प्रत्यहं नत -- जनेषु दयासमुद्रः ।
सद्भक्तिभावकलितेषु भृशं शरण्य—
स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३६॥

ॐ ह्रीं भक्तजनवत्सलाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

निः सख्यसारशरणं शरणं शरण्य—
आसाद्य सादितरिपुप्रथितावदातम् ।
त्वत्पादपङ्कजमपि प्रणिधानवन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन ! हा हतोऽस्मि ॥

भूयिष्ठभाग्यसदनं मदनाग्निनीरं,
यत्पादतामरसयुग्ममनल्पतेजः ।
संपूज्य गच्छति जनः शिवतामनर्घं
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥४०॥

ॐ ह्रीं सौभाग्यदायकपदकमलयुगाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिलवस्तुसार—
संसारतारक ! विभो भुवनाधिनाथ !
त्रायस्व देव करुणाह्रद ! मां पुनीहि,
सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ॥
गीर्वाणनाथनुत — पादपयोजयुग्म—
त्राता भवाम्बुनिधिमग्नशरीरभाजाम् ।
यः सर्वलोक – परमार्थ – पदार्थवेदी,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥४१॥

ॐ ह्रीं सर्वपदार्थवेदिने क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

यद्यस्ति नाथ ! भवदङ्घ्रि–सरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः ।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य ! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥
यत्पूर्वजन्मकृत -- पुण्यवतां जनानां,
संभाव्यते भवभवेऽपि हि यस्य सेवा ।
उन्मार्गवासितवतां ननु पापभाजां,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥४२॥

ॐ ह्रीं पुण्यबहुजनसेव्याय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र !
मान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः ।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः,
ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः॥

यन्मूर्तिरम्यवदनाम्बुज—दत्त–नेत्रा,
ये मानवा स्तुतिसुधारस–मापिबन्ति ।
नूनं भवन्ति सततं मरणातिगास्ते,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥४३॥

ॐ ह्रीं जन्ममृत्युनिवारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

(आर्या छन्द)

जननयनकुमुदचन्द्र-प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥

ये लोकनेत्र – कुमुदेन्दुनिभं प्रतुष्टाः,
संपूजयन्ति यमनन्तचतुष्टयाद्यम् ।
ते मोक्षमव्ययपदं ध्रुवमाप्नुवन्ति,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥

ॐ ह्रीं कुमुदचन्द्रयतिसेवितपादाय क्लींमहाबीजाक्षर-सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

(शालिनी छन्द)

काशीदेशे वाराणसीपुरेशो, यो बालत्वे प्राप्तवैराग्यभावः ।
देवेन्द्राद्यैः कीर्तितं तं जिनेन्द्रं, पूर्णार्घेन प्रार्चये वार्मुखेन ॥

ॐ ह्रीं सर्वगुणसम्पन्नाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय पूर्णार्घ्यम् ।

अथ समुच्चय जयमाला

शतमखनुतपादं, शान्तकर्मारिचक्रं,
शमदमयमगेहं, शङ्करं सिद्धकार्यं ।
सरसिजदलनेत्रं, सर्वलौकान्तिकार्च्यं,
सकलगुणनिधानं, संस्तवे पार्श्वदेवम् ॥

भवजलनिधि--पततामुत्तरणं, देवमनन्तगुणं जनशरणं ।
चिद्रूपं बहुगुणसमुदायं, उत्तमगुणगण--हतभवपाशं ॥
रम्यारम्य — गुणस्तवनीयं, कर्मबंध — निर्बन्धमजेयं ।
दुष्टोपद्रव—नाशन—वीरं, सुध्येयं जितमन्मथशूरं ॥
गरिमाक्रोधमहानल-कुशदं, हृदि मृग्यं महतामतिविशदं ।
कर्मदाहतीव्राग्नि— मतुल्यं, गतपरमात्मपदं गतशल्यं ॥
संसृतिविषहरणामृत—कूपं, पदनतनाग—नरामर—भूपं ।
तुङ्गाशोक—महीरुह-सरितं, उद्गमवृष्टियुतं सुरमहितं ॥

योजनमितदिव्यध्वनिनिनदं, सुरचामर--वीज्यं हतविपदं ।
पीठत्रय — नायकमघमथनं, हरितविभावलयं गुणसदनं ॥
दानवारिदुन्दुभि--सद्ध्वानं, श्वेतातपत्रारण—गुणमानं ।
मणिहेमार्जुन—शालत्रितयं, पदनतभक्त—जनावनसुदयं ॥
पृष्ठलग्न--जनतारण— दक्षं, विस्मयनीयं हतमदकक्षं ।
हतकमठोत्थापित-बहुधूलिं, जितमुसलोपम--जलधारालिं ॥
हतपैशाचिक -- विप्लवजालं, नतधर्मिष्ठजनं गुणमालं ।
पूतनामधेयं शिवभाजं, वरपवित्रपादं जिनराजं ॥
दर्शनीयमपहत — घनपापं, भक्तिहीन— भविमध्यमरूपं ।
भक्तिनम्रजन—वत्सलवन्तं, भूरिभाग्य —दायकमरिहंतं ॥
लोकालोक -- पदार्थविवेद्यं, पदनतसुकृति - जनैरभिवन्द्यं ।
जन्मजरा - मरणच्युतदेवं, 'कुमुदचन्द्र'यतिकृतपदसेव्यं ॥

(घत्ता)

विश्वादिसेनान्वयव्योमतिग्मं, सद्भव्यवारांनिधिधर्मचन्द्रं ।
देवेन्द्रसत्कीर्तित-पादयुग्मं, श्रीपार्श्वनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं क्रूरकमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय जयमालार्घ्यम् ।

यः प्राग्विप्र इभोऽनु द्वादशदिवि, स्वर्गी ततः खेचरः ।
पश्चादच्युतकल्पजो निधिपतिः, ग्रैवेयिके मध्यमे ॥

इन्द्रोऽभूत्तत ईशतां शुभवचः. आनन्दनामानते ।
श्रीर्वाणस्तत उग्रवंशतिलकः, पार्श्वेट् स वो रक्षतात् ॥

इत्याशीर्वादः, परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

गुणे वेदाङ्गचन्द्राब्दे, शाके फाल्गुनमासके ।
कारंजाख्यपुरे नूनं, पूजेयं सुविनिर्मिता ॥

इति श्रीबलात्कार—गच्छीयभट्टारकेन
श्रीमद्देवेन्द्रकीर्तिना विरचिता ।

कल्याणमंदिरपूजा सम्पूर्णा ।

* पेज १४४ का शेष भाग *

श्लोक २६–लाल मूंगा की माला लेकर, दक्षिण की ओर मुख करके, लाल रंग के आसन पर बैठ कर २७ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में अगर, हाउवेर और छाड़-छबीला मिश्रित धूप क्षेपण करे।

श्लोक २७–काले सूत की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके काले ऊन की आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक २१ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, गिरी, सैंधवनमक तथा घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। अन्तिम दिन भोजपत्र पर यंत्र लिख कर और उसे पंचामृत में मिला कर नदी में प्रवाहित करे ॥२७॥

श्लोक २८–पीले सूत की माला लेकर, दक्षिण की ओर मुख करके, पीले रंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धासहित २१ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में चंदन, लवँग, कपूर, इलायची तथा घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥२८॥

श्लोक २६–विद्रुम (मूंगा) की लाल माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, लाल रंग के आसन पर बैठ कर एकाग्रमन से २१ दिन तक प्रतिदिन ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कस्तूरी शिलारस, अगर और सफेद चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥२६॥

श्लोक ३०–रुद्राक्ष की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, काले रंग के आसन पर बैठ कर ६० दिन तक प्रतिदिन ७०० बार ऋद्धि और मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में दशाङ्ग अथवा गूगल, लोभान एवं घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥३०॥

श्लोक ३१–सूत की सफेद माला लेकर, पूर्व की ओर मुख

करके, सफेद आसन पर बैठ कर १४ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में चन्दन, अगर और छाड़ छबीला मिश्रित धूप क्षेपण करे। १५ वें दिन घृत, अगर तथा पीले सरसों से हवन करे तदुपरान्त मिष्टान्न वितरण करे ॥३१॥

श्लोक ३२–पद्मबीज की माला लेकर नैऋत्य की ओर मुख करके, काले रंग के आसन पर बैठ कर २७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, तगर, नागरमोथा और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥३२

श्लोक ३३–रुद्राक्ष की माला लेकर, वायव्य की ओर मुख करके जोगिया रंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा कपूर, चन्दन, गिरि, इलायची और घृत मिश्रित धूप निर्धूम अग्नि में क्षेपण करे ॥३३॥

श्लोक ३४–बिच्छू कांटा के फलों की माला लेकर, वायव्य की ओर मुख करके, काले रंग के आसन पर बैठ कर मन, वचन, काय की चंचल प्रवृत्ति को रोक कर २१ दिन तक प्रतिदिन २१ बार ऋद्धि-मंत्र द्वारा मंत्रित सरसों को पानी में डाले और गूगल, सरसों, लालमिर्च एवं घृत मिश्रित धूप की धूनी देवे ॥३४

श्लोक ३५–चन्दन की माला लेकर, नैऋत्य की ओर मुख करके, कदलीपत्र के हरित आसन पर बैठ कर निश्चल मन से २१ दिन तक प्रतिदिन ७०० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में घृत और लोभान मिश्रित धूप क्षेपण करे। मंत्र का जाप ब्रह्मचर्यपूर्वक एकान्त स्थान में करे ॥३५॥

श्लोक ३६–पाट (सन) की माला लेकर, ईशान की ओर

मुख करके, हरे रंग के आसन पर बैठकर श्रद्धापूर्वक ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा गूगल और कुन्दरू मिश्रित धूप निर्धूम अग्नि में क्षेपण करे ॥३६॥

श्लोक ३७–पूर्व की ओर मुख करके, लालरंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि–मंत्र का कनेर के फूलों से जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कपूर और कस्तूरी मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥३७॥

श्लोक ३८-सफेद काष्ठ की माला लेकर, सफेद रंग के के आसन पर बैठकर १४ दिनतक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि–मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में लवँग, कुन्दरू, चन्दन और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥३८॥

श्लोक ३६–कमल की माला लेकर, ईशान की ओर मुख करके, हरे रंग के आसन पर बैठकर ७ दिनतक प्रतिदिन १००८ बार श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, गरी और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥३६॥

श्लोक ४०–रुद्राक्ष की माला लेकर, ईशान की ओर मुख करके, हरे रंग के आसन पर बैठ कर विकल्परहित मन से १४ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गरी और गूगल मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥४०॥

श्लोक ४१–काले सूत की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, काले रंग के आसन पर बैठ कर स्थिर चित्त से २१ दिनतक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में नमक, मिर्च, गूगल और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥४१॥

श्लोक ४२–कदलीफल की माला लेकर, उत्तर की ओर मुख करके, रंग विरंगी लुंगी के आसन पर बैठ कर २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में लवँग, कपूर, चन्दन, इलायची, शिलारस और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। पद्मावती देवी की मूर्ति का कसूमल रंग के वस्त्राभूषणों से श्रृङ्गार करे ॥४२॥

श्लोक ४३–काले रंग के सूत की माला लेकर आग्नेय की ओर मुख करके, काले कंबल के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक १४ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में चन्दन, गूगल और लालमिर्च मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥४३॥

श्लोक ४४–मूँगा की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, लाल रंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक ४० दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कस्तूरी, चन्दन, शिलारस और कपूर मिश्रित धूप क्षेपण करे। एकाशन एवं भूमिशयन करे और यंत्र पास में रखे ॥४४॥